



अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् ॥

भाषाटीकासहित ॥

जिसमें

श्रीपिप्पलाद आचार्य्यप्रति कवन्धीआदिक छः ऋषियों को शिष्यभावसे पृथक् २ प्रश्न करना और श्रीपिप्पलादजी को यथायोग्य उनका उत्तर देना सविस्तर वर्णित है ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न श्रीमुन्शीनवलकिशोर (सी, आई, ई) ने बहुतसा धन व्ययकरके कोलाख्यनगर निवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मणसे सरल देशभाषामें उल्थाकराय और स्वयंत्रालयमें मुद्रितकराय प्रकाशित किया ॥

तृतीयबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी
माह मार्च सन् १९०७ ई० ॥

ॐ

तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

एकमेवाद्वितीयम्ब्रह्म ॥

अथ अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् ॥

इस उपनिषद् बिषे कबंधी आदिक छः ऋषियोंने शिष्यभाव से पृथक् २ प्रश्न किये हैं अरु तिन्हों के उत्तर पिप्पलादनामक आचार्य ने दिये हैं। एतदर्थ इस उपनिषद् का नाम प्रश्नोपनिषद् कहते हैं। तिसकी भाषा टीका किंचित् श्रीशंकराचार्य जी के भाष्य अरु आनन्दगिरि टीका अरु पंडित पीताम्बरजीके अनुवादके आशयपर श्रीगुरु सन्त महात्मा अरु आत्मनिष्ठोंकी कृपा रूप बलको पाय के गुरु शिष्य के संवाद द्वारा कहताहौं ॥

इस मेरे कहने में जो कुछ दोष होयँ तिनको सर्व पाठक जन क्षमाकर सुधारलेवें ॥

ॐ

भूमिका ॥

अथर्वणवेदके मन्त्रों से अर्थात् परिमित (संख्याबद्ध) अक्षरवाले जे वेदके वाक्यहैं तिनको मन्त्र कहते हैं तिन करके बोधित जो अर्थ है तिनका विस्तार करके ऽ [अर्थात् अथर्वण वेद में । ब्रह्मा देवानामित्यादि । २ ब्रह्मादेवताओं को इत्यादि] मन्त्रोंसेही आत्मतत्त्वका निर्णय किया होने से । अरु तिसही अथर्वण वेद विषे इस उपनिषद्रूप ब्राह्मणभागसे पुनः तिसही आत्मतत्वका कथन है सो पुनरुक्ति दोष है । यह आशंका चित्त विषे होती है सो नहीं क्योंकि मन्त्रों करके संक्षेपमात्र कथन किया जो आत्मतत्त्व तिसही का यहां इस ब्राह्मणभाग करके सविस्तरप्राणकी उपासना आदिक साधनों सहित होनेसे कथन है एतदर्थ पुनरुक्ति दोष है नहीं । इसप्रकार कहते हुये आचार्य इस ब्राह्मणभाग को प्रकटकरते हैं ॥ यहां यह विशेष है कि मंत्ररूप जो विद्या है सो । पराचैवापराच । इस प्रमाणसे पर अपरभेदसे दो प्रकारकी है । तिनमें शिक्षाआदि छः अंगोंसहित जो ऋग्वेदादि नामों करके विख्यात विद्या सो कर्म्मरूप अरु उपासनारूप होने से अविद्या है तिन बिषे जो दूसरी उपासनारूप है सो द्वितीय अरु तृतीय इन दोनों प्रश्नों करके प्रतिपादन कीजायगी । अरु प्रथमा जो कर्मरूपा है सो कर्मकांड विषे वर्णन कियाहै एतदर्थ यहां उसका वर्णन नहीं करते । अरु कर्मरूप अरु उपासनारूप जो विद्या है तिनके फल अनित्यादि दोष करके युक्तहैं ताते मुमुक्षु को तिनसे वैराग्यार्थ प्रथम प्रश्न विषे स्पष्टकरते हैं । अरु प्रथम कही जे पर अपर दो विद्या तिन बिषे दूसरी जो पर विद्या है सो उसको कहते हैं । अथ

परा यया तदक्षरमधिगम्यते। (अब जिससे सो अक्षर जानिये सो पराविद्या है) इस प्रकार आरंभ करके समस्त मुंडक उपनिषद् से प्रतिपादन किया है। तिस बिषेभी। यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्तेस्वरूपाः। (जैसे प्रज्वलित अग्नि से सहस्त्रावधि चिनगारियां प्रकटहोती हैं) इत्यादिदोनों मन्त्रों करके उक्त जो अर्थ है तिसके विस्तारार्थ चतुर्थ प्रश्न है। अरु। प्रणवो धनुः। (ॐकार धनुष है) इसमंत्र बिषे जो उक्त अर्थ है तिसको स्पष्ट करने के अर्थ पंचम अरु षष्ठ प्रश्न हैं इस रीतिसे यह प्रश्न उपनिषद्रूप ब्राह्मण आत्मप्रतिपादक मन्त्रोंका विस्तारसे अनुवाद करनेवाला है एतदर्थही इसके विषय अरु प्रयोजनादिक अनुबन्ध तहांही कहे हैं एतदर्थ यहां पुनः नहीं कहते। ऐसे जानना] अनुवादसे यह प्रश्नोपनिषद् रूप ब्राह्मण [अपरिमित अक्षरवाला जो वेदका वाक्य तिसको ब्राह्मण कहते हैं] प्रारंभ करते हैं। अरु इस उपनिषद् बिषे ऋषियों के प्रश्न अरु उत्तररूप जो आख्यायिका है सो विद्या की स्तुत्यर्थ है। अरु सो ब्रह्मविद्या, कि जिस करके अक्षरब्रह्म की प्राप्तिहोती है, सो आगे कहेहुये प्रकारसे संवत्सर (एकवर्ष) पर्यन्त ब्रह्मचर्य से गुरुकुल बिषे वास अरु तप आदिक साधनों करके युक्त जो अधिकारी तिन करके ग्रहण करने अरु पिप्पलाद आदिक सर्वज्ञ मुनीश्वरों के तुल्य जो आचार्य्य तिन करके कहने योग्य है जिस किस करके नहीं। ऐसी विद्या की स्तुति करते हैं। अरु ब्रह्मचर्य्यादि। अर्थात् [इस ऋषियों की आख्यायिका का पूर्व कल्पबिषे विद्यमान साधनों के स्वरूपसे ब्रह्मचर्य्य अरु तप आदिक साधनों का विधान रूप अन्य प्रयोजन है ऐसे कहते हैं] अर्थात् वेदमें कल्पान्तर भेद नहीं सर्व कल्पों में वेद एकही है ताते इस सनातन आख्यायिका से ब्रह्मचर्य्यादि साधनों की सूचनासे तिनके करने की योग्यता सिद्ध होती है॥ इति भूमिका॥ हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्म॥

अनुक्रमणिका ॥

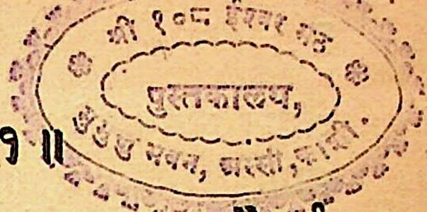
(१)-भूमिका
(२)-विज्ञापन
(३)-विनय
(४)-मूल मन्त्र पुष्टाक्षरों में
(५)-भाषा में भावार्थ सहित मूल अरु अक्षरार्थ के

ǃ ǃ इस चिह्नान्तर में मूल के पद
; ; इस चिह्नान्तर में मूलपदके अक्षरार्थ
[ ] इस चिह्नान्तर में आनन्दगिरि टीका का अनुवाद
( ) इस चिह्नान्तर में पर्याय शब्द
ऽ ऽ इस चिह्नान्तर में अर्थयोजना

श्लोक ॥

श्लोकार्धेनप्रवक्ष्यामि यदुक्तंग्रन्थकोटिभिः ।
ब्रह्मसत्यंजगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः ॥

इति ॥



अथ प्रथमप्रश्नः १ ॥

ॐ सुकेशाचभारद्वाजः, शैब्यश्चसत्यकामः, सौर्य्यायणीचगार्ग्यः, कौशल्यश्चाश्वलायनो, भार्गवोवैदर्भिः, कबन्धीकात्यायनस्ते, हैते, ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परंब्रह्मान्वेषमाणा एषह वैतत्सर्व्वंवक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः १ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतप्रथमप्रश्न भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

---

१ ॥ ॐ ॥ श्रीगुरुरुवाच । हे सौम्य ! हे प्रियदर्शन ! अब सावधान होके प्रश्नउपनिषद्को भी श्रवणकरो ।सुकेशाचभारद्वाजः। ‹भरद्वाज का पुत्र सुकेशा› नामवाला मुनि । अरु । शैब्यश्च सत्यकामः । ‹ शिबि ऋषिका पुत्र सत्यकाम › नामवाला मुनि । अरु । सौर्य्यायणीचगार्ग्यः । ‹ सूर्य्यके पुत्र सौर्यमुनि तिसका पुत्र सौर्य्यायणी सो गर्गगोत्र बिषे उत्पन्नभया ताते गार्ग्य › नामवाला मुनि । अरु । कौशल्यश्चाश्वलायनः । ‹ अश्वलऋषि का पुत्र कौशल्य › नामवाला मुनि । अरु । भार्गवो वैदर्भिः ‹ विदर्भदेशका रहनेवाला भृगुके गोत्र बिषे उत्पन्न भया ताते भार्गव› नामवाला मुनि । अरु । कबन्धी कात्यायनः । ‹ कत्यके पुत्र कात्यायन ऋषिरूप प्रपितामह (परदादे) वाला कबन्धी नामक › मुनि । ते हैते । ‹ यह विख्यात › छः मुनीश्वर सो । ब्रह्मपराः । ‹ ब्रह्मपर › अर्थात् अपरब्रह्म (प्राणोपासना) बिषे तत्परहोने करके प्राप्तभये हैं ताते ब्रह्मपर हैं । अथवा अपरब्रह्म जे छहों अंगों सहित ऋगादि वेदरूप अपराविद्या तिसबिषे निस्नातभये ताते ब्रह्मपर हैं । अरु । ब्रह्मनिष्ठाः । ‹ ब्रह्मनिष्ठ हैं ›

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति २ ॥

ऽ पिप्पलादउवाच । भूय एव तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ । ‹ फेर भी तपसे ब्रह्मचर्य से श्रद्धासे संवत्सर पर्यन्त सम्यक् वास करो › ऽ यद्यपि तुम सर्व तपस्वीही हो तथापि यहां फेर भी विशेषकरके नियताहारादिरूप तपसे अरु इन्द्रियों के संयमरूप ब्रह्मचर्य से अरु आस्तिक भावकी बुद्धिरूप श्रद्धासे आदरवान् हुये एकवर्ष के कालपर्यन्त सम्यक्प्रकार गुरुकी सेवा बिषे तत्परहुये निवासकरो । तिसके अनन्तर; । यथा कामं प्रश्नान् पृच्छथ । ‹ जैसी इच्छाहोय (तिसके अनुसार) प्रश्नोंको पूछो › ऽ जिसको जैसी इच्छा होय सो अपनी इच्छाके अनुसार जिस विषयकी जिज्ञासाहोय तिस विषयके सम्बन्धी प्रश्नों को पूछो । यदि विज्ञास्यामः सर्व्वं हवो वक्ष्याम इति । ‹ जब जानते होंगे तुम्हारे सर्व स्पष्टकहेंगे › । यदि हम तिस तुम करके पूछी हुई वस्तुको जानतेहोंगे तब तुम्हारे पूछेहुये वस्तुओंको स्पष्ट कहेंगे [यहां , यदि, शब्दका पर्यायरूप जो 'जब' शब्द है सो आचार्य की निरभिमानता के लखावने के अर्थ है कुछ अज्ञान अरु संशयके अर्थ नहीं । यह सर्व प्रश्नोंके निर्णयते बोधित है] २ ॥

३ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार पिप्पलाद मुनि की आज्ञानुसार कौशल्य आदि छहों मुनियों ने ब्रह्मचर्यादि साधनपूर्वक निवास किया ऽ । अथ कबन्धी कात्यायनउपेत्य पप्रच्छ । ‹ एक वर्ष पीछे कात्यायनका प्रपौत्र कबन्धीसमीपजायके पूछताभया › अर्थात् ऽ जबएकवर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य कररहे तब तिसके पश्चात् कात्यायन ऋषिका परपौत्र (परपोता) कबन्धी नामवालामुनि अपने आचार्य पिप्पलादमुनि तिनके समीपजायप्रणामकरप्रश्न

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ । भगवन् कुतो हवा इमाःप्रजाः प्रजायन्त इति ३ ॥

करताभया जो ऽ। भगवन् कुतो हवा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति । < हे भगवन् ! यहप्रसिद्ध प्रजा किसकारण से उपजे हैं > ऽ हे भगवन् ! यह प्रसिद्ध ब्राह्मणादि प्रजा किसकारणसे उपजती हैं ऽ ॥ प्रश्न ॥ [वे छहों मुनीश्वर परब्रह्म के जानने की जिज्ञासावान् हुये पिप्पलाद मुनिरूप आचार्य के समीपगये इसप्रकारसे आरम्भ कियेहुये इस परब्रह्मकी जिज्ञासाके प्रकरण बिषे प्रजापतिकृत प्रजा की सृष्टिको विषयकरनेवाले प्रश्न अरु उत्तर का कथन असंगत है ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य ! यह शंका चित्तमें विचार के ही प्रश्न उत्तर रूप श्रुतिका तात्पर्य कहते हैं यहां यह भाव है कि । तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोक इति । < तिसको यह निर्मल ब्रह्मलोक होता है > इस प्रकार उपासना के समुच्चय करके युक्त कर्म के कार्य ब्रह्मलोक को अरु । अथोत्तरेण इति । < अब उत्तरायण से > इस प्रकार जिस ब्रह्मलोक की गतिरूप देवयान मार्ग को आगे इसही प्रथम प्रश्न विषे कथन किया होनेसे यह अर्थ बनता है । अरु यह उपासना करके युक्त जो कर्मका कथन है सो केवल कर्मोंका उपलक्षण है, इसप्रकार भी जानना क्योंकि केवल कर्मके कार्य इन्द्रलोकको अरु तिस इन्द्रलोक की गतिरूप पितृयानमार्ग को भी । तेषामेवैषब्रह्मलोकः । तिनकोही यह ब्रह्मलोक (चन्द्रमंडलस्थइन्द्रलोक) होताहै । अरु । प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्त इति । < प्रजाकी कामनावाले दक्षिणायन मार्गको पावतेहैं > इस प्रकार आगे इसप्रथम प्रश्नबिषेही कथन किया होनेसे॥अरु यद्यपि परब्रह्म की जिज्ञासाके अवसर बिषे यह कथन भी असंगतही है तथापि केवल कर्मके कार्यसे अरु उपासनारूप कर्मके कार्य से जो विरक्त है तिसकोही तहां अधिकारहै एतदर्थ तिसकर्म उपा-

तस्मै सहोवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिञ्चप्राणश्चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ४ ॥

सनाके फलसे वैराग्यार्थ यह कहतेहैं। यद्यपि प्रश्नसे सृष्टि प्रतीतहोती है तथापि तिस सृष्टिके कथन बिषे प्रयोजनके अभावसे सृष्टिके कथनके मिस (बहाना) करके परब्रह्मकी विद्याका फल ही यहां कहते हैं] एतदर्थ मिश्रित अरु अमिश्रितरूप जो अपरब्रह्मकी विद्या अरु कर्म यह दो हैं तिनका जो कार्य है अरु जो गतिहै सो आपकरके कहने योग्यहै ॥ तिस अर्थवाला यह प्रश्नहै ऐसा जानना योग्यहै ३ ॥

४ ॥ हे सौम्य! उक्तप्रकार जब कबन्धीमुनिने सृष्टिके विषयमें अपने आचार्य पिप्पलादमुनिसे प्रश्नकिया तब ८ । तस्मै सहोवाच । तिसकेअर्थ सो स्पष्ट कहते भये । २ उस प्रश्नकरनेवाले कबन्धीनाममुनिको सो सर्व्वज्ञ आचार्य पिप्पलादमुनि शिष्य की शंकाके निवारणार्थ कहते भये ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे कबन्धिन् ८ । प्रजाकामो वै प्रजापतिः सतपोऽतप्यत । २ प्रजापति (ब्रह्मा) सो प्रजाकरनेकी कामना वालाहुआ तपको तपता भया) अपनी प्रजाकोसृजनेकी कामनावाला प्रजापति ब्रह्मदेव सो मैं सर्वात्मा अरु जगत् को मैं सृजों ऐसे ज्ञानवाला अरु ज्ञान कर्म के समुच्चयको करनेवाला अरु पूर्वकल्प सम्बन्धी हिरण्यगर्भकी भावनाकरके युक्त अरु इसकल्पकी आदिबिषे हिरण्यगर्भरूपसे सुखको प्राप्तभया अरुअपनीसृजी हुई स्थावरजंगमरूप प्रजाकापति हुआ पश्चात् प्रजाकी कामनावालाहुआ अरु जन्मान्तरबिषे भावनाकिये अरु श्रुतिबिषे प्रकाशितकिये अर्थकोविषय करनेवाले ज्ञानरूप तपको । तस्यज्ञानमयं तपः । तपता भया, अर्थात् चित्तादिकोंसे तिसके संस्कारको जगायके उत्पन्न करता भया अर्थात् [तहां प्रथमसूर्य अरु चन्द्रमाकी उत्पत्तिसे तिनके

भावको पायके तिसके पश्चात् चन्द्रमा अरु सूर्य इन दोनों करके साधने योग्यजो संवत्सर तिससंवत्सरके भावको पायके पश्चात् ऐसेही तिससँवत्सरके अवयवरूप दक्षिण अरुउत्तरदोअयन अरु मास पक्ष दिन रात्र इनके भावको पायके तिसके पश्चात् अयन आदिकों के क्रमसे साधने योग्य व्रीही यवादि अन्न भावको अरु रेतभावको पायके पश्चात् तिसरेत से प्रजाको उत्पन्नकरों ऐसे विचारके] । सतपस्तप्त्वा । < सो तपको तपिके > ? सो प्रजापति उक्तप्रकार श्रुति उक्त अर्थके ज्ञानरूप तपको तपिके अर्थात् विचारके ८ । समिथुनमुत्पादयन्ते रयिश्चप्राणश्चेति । < सो रयि अरु प्राण इन दोनों को उत्पन्न करताभया > ? प्रजापति सृष्टिके साधन रूप , रयि , ८ अर्थात् [यहां धनके वाची रयि शब्द करके भोज्य पदार्थों के समूह को लक्ष कराके अरु उन भोज्य पदार्थों को चन्द्रमाके किरणों के अमृतकरके युक्त होनेसे तिसद्वारा चन्द्रमा को लक्ष्य करते हैं इस अभिप्रायसे कहतेहैं]? अन्नरूप चन्द्रमा अरु अन्नके भोक्ता प्राण [अर्थात् । अहंवैश्वानरोभूत्वाप्राणिनांदेहमाश्रितः । प्राणापानसमायुक्तोपचाम्यन्नंचतुर्विधम् । < मैं वैश्वानर (जठराग्नि) रूपहोके प्राणियों के देह प्रति आश्रयको पाया हौं अरु प्राण अपान वायु करके युक्त हुआ चार प्रकारके अन्नको पचावता हौं > इस गीता स्मृति के वाक्य प्रमाणसेअग्निको प्राणके सम्बन्ध से प्राण शब्द करके भी अग्निरूप भोक्ताही लक्ष्यकराया है इस अभिप्राय सेयहां कहते हैं] अर्थात् प्राणरूप अग्नि (सूर्य) इन दोनों को उत्पन्न करता भया ॥ प्र० ॥ क्या विचार के करता भया ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! यह विचारके कि । एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति । < यह दोनों मेरी बहुत प्रकार की प्रजा करेंगे ऐसे > अर्थात् यह दोनों अन्न (चन्द्रमा) अरु तिसका भोक्ता अग्नि (सूर्य) सो मेरी इच्छा के अनुसार अनेकप्रकार की, प्रजाको करेंगे ऐसे चिन्तनकरके ब्रह्मांड की ८ अर्थात् [अग्नि (सूर्य) अरु अन्न (चन्द्रमा)

आदित्योहवैप्राणोरयिरेवचन्द्रमा । रयिर्वाएतत्सर्वं यन्मूर्तञ्चामूर्तञ्च तस्मान्मूर्त्तिरेवरयिः ५ ॥

को ब्रह्मांडके अन्तर्गत होने करके ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके अनन्तर उनकी उत्पत्तिहोती है इसअभिप्रायसे यहां कहते हैं] > उत्पत्तिके क्रमसे सूर्य अरु चन्द्रमा को प्रजापति सृजताभया ४ ॥

५ ॥ हे सौम्य ! तिन दोनों में । आदित्यो हवै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा । < सूर्य निश्चय करके प्रसिद्ध प्राण (अरु) अन्नही चन्द्रमा है > अर्थात् प्रजापति से ब्रह्माण्डान्तर्गत प्रकट किये जे सूर्य अरु चन्द्र तिन दोनों में सूर्य्य जोहै सो निश्चय करके लोकमें प्रसिद्ध प्राणरूपहुआ अन्नका भोक्ता अग्निहै अरु निश्चय करके अन्नरूप चन्द्रमा है । परन्तु यह एक भोक्तारूप अरु एक अन्नभोग्यरूप सो दोनों एकही प्रजापति हैं ॥ प्र० ॥ चन्द्र अरु सूर्य्य इन दोनों की जब प्रजापतिभाव से एकता है तब एकको भोक्तापना अरु दूसरेको भोग्यपना यह विषमभेद कैसे बनेगा ॥ उ० ॥ यह जो एकही प्रजापति के बिषे भोग्य भोक्तारूप विषम भेदहै सो गौण मुख्यभावका किया है । अर्थात् [तिस एकही प्रजापतिको ६ क्रियाशक्तिके आश्रय] गौणभाव कहनेकीइच्छा से अन्न (भोग्य) पनाहै अरु ६ ज्ञानशक्तिकेआश्रय ? प्रधानभाव के कहनेकी इच्छासे भोक्तापनाहै यह भेदहै] प्र० ॥ यह भेद कैसे है ॥ उ० ॥ । रयिर्वाएतत्सर्वंयन्मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्चतस्मान्मूर्त्तिरेवरयिः ५ । < जो मूर्त्तअरुअमूर्त्तहै सो सर्व्वयह अन्नही है > अर्थात् जो स्थूल अरु सूक्ष्मरूप मूर्त्त अरु अमूर्त्त जगत्है सो सर्व यह अन्न (भोग्य) रूपही है ॥ प्र० ॥ मूर्त्तरूप अन्न अरु अमूर्त्तरूप भोक्ता इन दोनोंको भी जब अन्नमयता (चन्द्ररूपता) हीहै तब । रयिरेव चन्द्रमा । > अन्नही चन्द्रमाहै ऐसा जो पूर्व वेद ने कहा सो कैसे बनेगा ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! जब मूर्त्त (अन्न) अरु अमूर्त्त (भोक्ता) यह दोनों विभागकरके गौण अरु प्रधान भावसे

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशंप्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान्रश्मिषुसन्निधत्ते । यद्दक्षिणं यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरादिशो यत्सर्व्वं प्रकाशयति तेन सर्व्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ६ ॥

कहने को इच्छितहोय तब अमूर्त्तरूप (भोक्ता) प्राणसे मूर्त्तरूप (भोग्य) द्रव्यको भुक्त होनेसे मूर्त्तकोही अन्नपनाहै] ताते पृथक् किये अमूर्त्तसे जो अन्न मूर्त्त (स्थूल) मूर्त्तिहै सोई अन्नरूप है । क्योंकि अमूर्त्त सूक्ष्मप्राणरूप भोक्ताकरके भोगाहुआहै ताते ५॥

६ ॥ हे सौम्य ! ताते अमूर्त्तभी प्राण भोक्ता जो अन्नहै तिस सर्वरूपही है ॥ प्र० ॥ कैसे सो सर्वरूपही है ॥ उ० ॥ । अथादित्यउदयन्यत्प्राचींदिशंप्रविशति । ‹ अब सूर्य्य उदयहुआ जो पूर्वदिशा के अर्थ प्रवेश करताहै › तिसकरके उस पूर्वदिशाको अपने प्रकाशकरके व्याप्तकरताहै ‹ । तेनप्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते । ‹ तिससे पूर्वदिशाकेअन्तर्गत प्राणिनकेताईं किरणों बिषे प्रवेश करता है › ? तिस अपनी व्याप्तिसे पूर्वदिशाके अन्तर्गत सर्व प्राणधारियों को अपने प्रकाशरूप व्यापक किरणोंबिषे प्राप्त होनेसे प्रवेशकरताहै । अर्थात् अपनारूप करताहै। तैसेही ‹ । यद्दक्षिणंयत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरादिशो । ‹ जो दक्षिणदिशाके अर्थ, जो पश्चिम दिशाके अर्थ, जो उत्तरादिशाके अर्थ, जो अधो, जो ऊर्ध्व, जो बीचकी दिशाके अर्थ । ? जो पूर्व दिशाके अर्थ प्रवेश करता है सो तैसेही दक्षिण पश्चिम उत्तर नीचे ऊपर मध्यकी अर्थात् अग्नि ईशानादि कोणकी दिशाओं के अर्थ प्रवेश करताहै । अरु ‹ । यत्सर्व्वं प्रकाशयति । ‹ जो सर्व को प्रकाशताहै › ? जो अन्य सर्व जगत्को प्रकाशता है । अरु । तेन सर्व्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते । ‹ तिससे सर्व प्राणियों को किरणों बिषे प्रवेशकरता है › ? तिस अपने प्रकाशकी व्याप्ति

सएष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते। तदेतदृचाभ्युक्तम् ७॥

विश्वरूपंहरिणंजातवेदसं परायणंज्योतिरेकंतपन्तम्। सहस्ररश्मिःशतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः ८॥

से सर्वदिशाविषे स्थित सर्व प्राणियोंको किरणोंविषे प्रवेशकरता वा धारता है ६॥

७॥ हे सौम्य! । स एष वैश्वानरो विश्वरूपः । ; सो यह वैश्वानर विश्वरूपहै ; अर्थात् सो यह भोक्ता प्राणवैश्वानर सर्वात्मा विश्वरूप है। अरु ८ । प्राणोऽग्निरुदयते । ; प्राण अरु अग्निरूप उदय होताहै ; १ जो वैश्वानर विश्वरूपहै सो विश्व का आत्माहोने से प्राण अरु अग्निरूपहै अरु सोई भोक्ता दिन दिनविषे सर्वदिशाको अपनारूप अर्थात् प्रकाशरूप करताहुआ उदय होताहै। अरु ८ । तदेतदृचाभ्युक्तम् ७ । ; सो यह ऋचाने भी कहाहै ; २ सो यह कथनीय वस्तु आगे के अष्टम वाक्यमय वेदके मंत्ररूप ऋचाने भी कहाहै ७॥

८॥ हेसौम्य! । विश्वरूपंहरिणंजातवेदसंपरायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । ; सर्वरूप किरणोंवाला ज्ञानवान् आश्रय ज्योति अद्वितीय एक तापके करनेवाले ; अर्थात् सर्वरूप किरणोंवाला ज्ञानवान् सर्वप्राणका आश्रय अरु सो सर्वप्राणियोंका चक्षुरूप ज्योति अद्वैत अरु तापक्रियाके करनेवाले अपने आत्मरूप सूर्य को ब्रह्मवेत्ता पण्डित जानते भये॥ प्र०॥ कौन यह है जिसको ब्रह्मवेत्ता पण्डित जानते भये॥ उ०॥ । सहस्रराश्मिः शतधा वर्त्तमानः । ; अनेक किरणोंवाला अरु अनेक प्रकार करके वर्त्तमान ; अर्थात् अनेक प्रकार प्राणियों के भेदकरके वर्त्तताहुआ। अरु १। प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः । ; प्रजाओंके मध्यउदितहोता है यह सूर्य्य है ; १ प्रजा (प्राणधारि) यों के मध्य चैतन्यरूपता

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायनेदक्षिणञ्चोत्तरञ्च तद्येवैतदिष्टापूर्त्तेकृतमित्युपासते तेचान्द्रमसमेवलोकमभिजयन्ते । तएवपुनरावर्त्तन्तेतस्मादेतेऋषयःप्रजाकामादक्षिणंप्रतिपद्यन्तेएषहवै रयिर्यःपितृयाणः ९ ॥

करके उदित (प्रकट) होता है तिसको ब्रह्मवेत्ता पंडितयहसूर्य्य है ऐसा तिसकोजानतेभये ८ ॥

९ ॥ हे सौम्य ! जो यह अन्नरूप मूर्त्तिमय चन्द्रमा है अरु अन्न का भोक्ता अमूर्त्तमय प्राणरूप सूर्य्य है सो यह एकही जोड़ासर्व रूप है । अरु यह दोनों मेरी बहुत से प्रकारकी प्रजाको करेंगे प्र० ॥ कैसे करेंगे ॥ उ० ॥ चन्द्रमारूप अन्न अरु सूर्य्यरूपप्राण को संवत्सर आदिक द्वारा प्रजाकी उत्पत्तिका कर्तृत्वपनाहै सोई यहां वेद भगवान् कहते हैं । संवत्सरो वै प्रजापतिः । ; संवत्सर ही प्रजापति है ; अर्थात् संवत्सररूप जो कालहै सोई प्रजापति है । क्योंकि संवत्सर को तिस प्रजापतिकरके निर्वाह किया है ताते अरु जिसकरके चन्द्रमा अरु सूर्य्य इन दोनों से निर्वाह करनेयोग्य जो तिथि दिवस रात्रियोंका समुदायरूप जे संवत्सर हैं सो उन चन्द्र अरु सूर्य्य से अपृथक् होनेसे सोई रूप है । तिसकरके सो संवत्सर भी वो युगलरूपही है । ऐसे यहां कहते हैं । तस्यायने दक्षिणञ्चोत्तरञ्च । ; तिसके दक्षिण अरु उत्तर रूप दो अयन (मार्ग) हैं ; अर्थात् तिससंवत्सर रूप प्रजापतिके दक्षिण अरु उत्तर यह दोनों प्रसिद्ध छः छः मासरूप अयन (मार्ग) हैं अरु जिस दक्षिण अरु उत्तर मार्ग करके सूर्य जो है सोक्रम से केवल कर्मिष्ट अरु उपासनाकरके युक्त कर्मकरनेवाले जनों के पावने योग्य लोक को पावन करता हुआजाता है ॥ प्र० ॥ सो कैसे है ॥ उ० ॥ । तद्ये वै तदिष्टापूर्त्तेकृतमित्युपासते । ; जो ऐसे निश्चयकर तिस इष्ट अरु पूर्त्तरूप कृत (कर्म) को उपासते हैं ; अर्थात् केवलकर्मी अरु कर्म उपासनाके समुच्चय सेवन

करनेवाले जनहैं तिनमें ब्राह्मणादिकों बिषे जो जन इसप्रकार निश्चय करके तिन इष्ट अरु पूर्त्त अर्थात् [अग्नि होत्र तप, (कृच्छ्रचान्द्रायणादि) सत्यभाषण देवतोंका आराधन अतिथि पूजन अरु वैश्वदेवरूप जो कर्म हैं तिनको अथवा पंचयज्ञरूप नित्यकर्मको इष्टा कहते हैं अरु वापी, कूप, तड़ाग, अरु देवालय, अन्नदान, अरु देवताओंके निमित्त आरामादिक बनवावने, इत्यादि जो कर्म हैं सो पूर्त्त हैं] इत्यादि जे कर्म हैं तिसको ही उपासते (यथाविधि करते) हैं अकृत (नहीं करने योग्य) तिसको नहीं । ते चान्द्रमसमेवलोकमभिजयन्ते । ; सो चन्द्रमा बिषे भये लोककोही पावते हैं ; अर्थात् जो पुरुष निषिद्ध कर्मों को त्याग के इष्टापूर्तारूप कर्म को उपासते हैं सो चन्द्रमण्डल बिषे उभय रूप प्रजापतिके अंशमय भोज्य (अन्न) रूप लोकों कोही पावते हैं क्योंकि चन्द्रमाबिषे भये लोकोंको कर्मरूपत्वहोनेसे । अरु । तएव पुनरावर्त्तन्ते । ; सो पुनः आवृत्ति होते हैं ; अर्थात् जो पुरुष इष्टापूर्त्तादिकर्मकरके चन्द्रलोकको पावते हैं सोई पुरुष अपने पुण्यकर्मोंका भोगोंद्वारा क्षयहोनेसे पुनः जन्म मरणरूप आवृत्तिकोही पावतेहैं उनका आवागमन नहीं छूटता । तस्मादेतेऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते । ; ताते यह ऋषि अरु प्रजाकामा दक्षिणायन से पावते हैं ; अर्थात् चन्द्रलोकको प्राप्त भये पुनः इस लोकबिषे आवते है ताते यह स्वर्ग के द्रष्टा अर्थात् चन्द्रलोकके द्रष्टा क्योंकि चन्द्रलोक कोभी स्वर्गत्व है । ऋषि अरु प्रजाकी कामनावाले गृहस्थ सो कहे प्रकार अन्नमय प्रजापतिरूप चन्द्रमाको कर्मोंका फलरूप होनेकरके इष्ट अरु पूर्त्तरूपकर्मसे निर्वाह करते हैं। एतदर्थ अपने पुण्यकर्म रूपही दक्षिणायन मार्गसे उपलक्षित (लखायेहुये) चन्द्रलोक को पावते हैं अरु । एषहवैरयिर्यःपितृयाणः ९ । ; यह पितृयान निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्न है ; अर्थात् यह जो पितृयान करके लक्षित चन्द्रमाहै सो निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्नही है ९ ॥

अथोत्तरेणतपसाब्रह्मचर्य्येणश्रद्धयाविद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते । एतद्वैप्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्नपुनरावर्त्तन्तइत्येष निरोधस्तदेषश्लोकः १० ॥

१० ॥ हे सौम्य ! । अथोत्तरेणतपसाब्रह्मचर्य्येणश्रद्धयाविद्यया । ; अब उत्तरमार्गकरके तपकरके ब्रह्मचर्यकरके श्रद्धाकरके विद्याकरके; अर्थात् दक्षिणायनसे इतर जो उत्तरायणमार्ग तिस बिषे जो चलनेवाले पुरुष हैं सो तप (प्राणायामादि) करके अरु शमदमादि लक्षणरूप ब्रह्मचर्यकरके, अरु विश्वास लक्षण रूप श्रद्धाकरके अरु विद्याकरके, अर्थात् प्रजापतिके तादात्म्यको विषयकरनेवाली अहमस्मि उपासना तिसकरके । आत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते । ; आत्माको जानके आदित्य को पावते हैं ; अर्थात् समस्त स्थावर जंगम के आत्मा अरु प्राणरूप सूर्य्यको । अहमस्मि । भावसेजानकेप्राणमय सर्वअन्नकेभोक्ता सूर्य्यलोक को पावता है । एतद्वैप्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणं । ; यहही प्राणोंका आश्रयहै (अरु) यहही अविनाशी है (अरु) यहही अभयहै (अरु) यहही परमगति है ; अर्थात् यह ही जगदात्मासूर्य्य सर्व प्राणोंका समष्टिरूप आश्रयहै अरु यहही अविनाशी है ताहीतें भयरहित अभय है यह चन्द्रवत् वृद्धि क्षयके भयवाला नहीं । अरु यह केवल उपासना वाले अर्थात् पञ्चाग्निविद्या अरु वैश्वानर आदि विद्याकी रीतिसे अथवा प्राण सूर्य्य आदिकोंकी अहमस्मि उपासना करनेवाले अरु कर्म उपासनाके समुच्चय सेवनकरनेवाले पुरुषोंकी परमगतिहै क्यों कि । एतस्मान्नपुरावर्त्तन्ते । ; इससे पुनरावृत्तिको पावते नहीं ; अर्थात् जैसे उपासनासे रहित केवल कर्मकरनेवाले पुरुष चन्द्रलोक को पायके फेर इस लोक बिषे आवते हैं, तैसे उपासनाके करनेवाले किंवा समुच्चय के करनेवाले सूर्य्यलोक को पाय के

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम् ॥ अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ११ ॥

पुनरावृत्ति को पावते नहीं। अरु (इत्येष निरोधः) < ऐसे यह निरोध है> अर्थात् तिस उपासना से रहित होने करके सूर्य्य (उत्तरायण) से रोके हुये केवल कर्म करनेवाले अविद्वान् पुरुष आत्मा अरु प्राणमय संवत्सररूप सूर्य्यको पावते नहीं ताते इस प्रकार सोई यह संवत्सर अविद्वानों का अनावृत्ति में निरोध है। अरु (तदेषः श्लोकः) < तिस बिषे यह श्लोक है > अर्थात् इस कहेहुये अर्थ बिषे यह अग्रिम एकादशवां वाक्यमय श्लोकरूप वेदकामन्त्र प्रमाण है १० ॥

११ ॥ हे सौम्य ! (पञ्चपादं) < पञ्चपाद है >। अर्थात् इस संवत्सररूप सूर्य्यके पांचऋतु पादों (चरणों) वत् पांचपादहैं [दो दोमासके ऋतु यद्यपि छःहैं तथापि यहां जो श्रुतिने पांचऋतु कही है सो हेमन्त अरु शिशिरकी एकरूपता होनेसे कहीहै] तिन ऋतु रूप पांचपादों करके यह सूर्य्य 'जैसे चरणोंसे पुरुष' तैसे वर्त्तताहै ताते इसको पांचपादवाला कहते हैं। अरु (पितरं) < पिता है जिसको पांचपादवाला कहते हैं तिस संवत्सररूप सूर्य्य को अन्नादि सर्व्वका जनकपना होनेसे इसको पितर कहते हैं। अरु (द्वादशाकृतिं) < बारह अवयववाला है > जो पंचपादवाला सर्वका पिता संवत्सररूप सूर्य्य हैं तिसके द्वादशमासात्मक षट् ऋतुरूप अवयव हैं ताते इसको द्वादशाकृति कहते हैं अथवा द्वादशमासोंकरके इस संवत्सररूप सूर्य्य अवयवी भावका करता होताहै एतदर्थ द्वादशमासमय षट्ऋतुरूप इसके अवयवभाव में करनाहै ताते इसको द्वादशाकृति कहते हैं अरु। < (परेअर्द्धे पुरीषिणम्) < परऊंचे स्थानबिषे जलवालाहै >> आकाशरूप अन्तरिक्षलोक से पर अरु ऊंचेस्थान तीसरे स्वर्ग बिषे स्थित है ताते

इसको परे अर्द्धे करके कहाहै अरु जलवाला है । अर्थात् । आदि त्याज्जायतेवृष्टिः । इस स्मृतिके प्रमाण से । अरु सूर्य जब बहुत तपता है तब जलको वर्षता है यह प्रसिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाणहै ताते सूर्य्य जलवाला है ऐसे कालकेवेत्ता कहते हैं । अरु । अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं । (अरु यह अन्यतो तिस निपुण (सर्वज्ञ) को । सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति । (सातचक्र बिषे अर्पित है ऐसा कहते हैं) अर्थात् सात अश्वरूप अथवा (सप्तग्रहरूप अश्व (क्योंकि सूर्यकेसाथ भ्रमणकरनेवाले होने से)) अरु षट् ऋतुवाले द्वादशमास इस निरन्तर गतिवाले कालरूप चक्रबिषे 'जैसे रथकी नाभिबिषे अरा अर्पितहोते हैं तैसे' यह सर्व जगत् अर्पितहै ऐसा कहते हैं ॥ हे सौम्य! जब संवत्सररूप सूर्य प्रथम पक्षबिषे पांचपाद अरु द्वादश आकृतिवालाहै अरु जब दूसरे पक्षबिषे सप्त अश्वरूप अरु षट्ऋतुवाला ऐसा कहाहै [तहां यह भावहै कि प्रथम पक्षबिषे ऋतुओं के पादपनेकी कल्पनासे अरु द्वादशमासोंके अवयवपने की कल्पनासे सूर्य्यरूपकरके संवत्सर रूपकालात्माही कहा । अरु दूसरे पक्षबिषे हेमन्त अरु शिशिर इन दोनों ऋतुको (कि जिनको पंचपादनके वर्णन में एकरूप कहा है) भिन्न करके षट् ऋतुओं को रथचक्रगत अनेक वक्रकाष्ठरूप अरेपने की कल्पना से संवत्सर को चक्रवत् भ्रमणरूप गुणके योगसे चक्रपनेकी कल्पना करके अरु कालके मुख्यभावसे सर्वका आश्रय होनेकरके भी सोई संवत्सर रूप कालही कहा है । ताते इन कहेहुये दोनोंपक्षमें जो भेद है सो भी गुणोंके अरु कल्पनाके भेदसे भेदहै कुछ कालरूप धर्मीका भेदनहीं [एतदर्थ सर्वप्रकारसे संवत्सरमय कालरूप अरु चन्द्र सूर्य्यरूप हुआ भी प्रजापतिही जगत्का कारणहै ११ ॥

१२ ॥ हे सौम्य! जिस संवत्सरबिषे यह विश्व स्थितहै । अर्थात्)] संवत्सरको भी मास अरु दिनरात्रिरूप अवयवोंवाला हुये विना ओषधी आदिकोंकी जनकताका अभावहै अरु पूर्व इस

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिशुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिंकुर्व्वन्तीतर इतरस्मिन् १२ ॥

को पिता करके कहाहैं ताते अब उस संवत्सरकी मास आदिक रूपताको कहतेहैं] १ सोई अर्थात् जो मासादि अवयवोंवाला ओषधीका पिता संवत्सर नामवाला प्रजापति अपने अवयवरूप मासोंविषे समस्त पूर्ण होताहै। ताते २ । मासोवै प्रजापतिः । < मासही प्रजापति है > १ मासजो है सो अन्न अरु अन्नका भोक्ता इन उभयरूपवाला 'संवत्सररूपवाला' प्रजापतिही है । तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः । < तिसका कृष्णपक्षही अन्नहै > १ अर्थात् भोग्य भोक्ता उभयरूपवाला जो मासहै तिस मासरूप प्रजापति का एकभाग जोकृष्णपक्षहै सोई अन्नरूप चन्द्रमाहै। अरु ८ । शुक्लः प्राणः । < शुक्लपक्ष प्राणहै > अर्थात् कृष्णपक्षसे इतर दूसरा भाग जो शुक्लपक्षहै सो प्राण अरु अग्निमय भोक्ता सूर्य है । तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्व्वन्ति । < ताते यह ऋषिलोग यज्ञको शुक्लपक्षविषे करते हैं एतदर्थ १ जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणको सूर्य्यरूपही देखतेहैं अरु जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणसे भिन्न जो कृष्णपक्षरूप अन्नहै तिसको वे नहीं देखते। ताते ऐसे देखनेवाले जे ऋषिलोग हैं सो अपने इष्टयज्ञको कृष्णपक्षविषे करतेहुये भी शुक्लपक्षाविषेही करते हैं। अरु ९ । इतर इतरस्मिन् १२ । < इतर इतरविषे करते हैं > ९ प्राणके द्रष्टासे जे अन्य ऋषिलोगहैं सो तो शुक्लपक्षको सर्वात्मा प्राणरूप देखते नहीं किंतु प्राणरूपसे न देखनेरूप कृष्णपक्षके भावको प्राप्तभये कृष्णपक्ष कोही देखते हैं वे ऋषि अपने इष्टयज्ञको शुक्लपक्षविषे करतेहुये भी तिससे अन्य कृष्णपक्षविषेही करते हैं १२ ॥

१३ ॥ हे सौम्य! बारहवें मन्त्रसे कहाजो मासरूप प्रजापति सो भी अपने अवयवरूप दिन अरु रात्रि विषेही पूर्ण होताहै

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणंवा एतेप्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्यासंयुज्यन्ते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्यासंयुज्यन्ते १३ ॥

एतदर्थ सो । अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः । < दिनरात्रि निश्चय प्रजापतिहै तिसका दिवसही प्राणहै (अरु) रात्रिही अन्नहै > अर्थात् दिनरात्रिरूप जो एक प्रजापति है तिसका भी दिवसहै । सोई प्राण अरु अग्निरूप अन्नका भोक्ता सूर्य्यहै अरु रात्रि जो है सोई अन्नरूप भोग्य चन्द्रमाहै । अरु < । प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते । < जो दिवसमें मैथुनको करते हैं सो दिवसरूप प्राणको खोवते हैं > > जो पुरुष अपनी अविवेकताके वशभये दिवसमें प्रीतिके कारण स्त्री तिसके साथ मैथुनकर्मको करते हैं सो पुरुष दिवस रूप प्राणको खोवते हैं । हे सौम्य! जब यह ऐसेहै तब दिनमें मैथुनकर्म करने योग्य नहीं । इसप्रकार जो दिवसमें मैथुनका निषेध कहाहै सो प्रासंगिके कहाहै । अरु < ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते । < जो रात्रिविषे मैथुनको करते हैं सो ब्रह्मचर्य्यहीहैं > > जो विवेकी पुरुषहैं सो ऋतुकालमें भी रात्रि के समयही अपनी स्त्रीके साथ मैथुनकर्मको करते हैं सो उनका ब्रह्मचर्य्यही है । सो श्रेष्ठहै ताते ऋतुकालमें रात्रिविषेही स्त्री से संयोग करने योग्यहै । हे सौम्य! यह ऋतुगमनकी विधि जो कही है सो भी प्रासंगिकही कही है । अब जो प्रसंग पूर्वसे चला है तिसको श्रवण करो यह जो दिवस रात्रिरूप प्रजापति कहा है सो व्रीहि (धान्य) यवादि अन्नरूपसे स्थित भया है १३ ॥

१४ ॥ हे सौम्य! इस कहे प्रकार क्रमकरके दिनरात्रिरूप प्रजापति अन्नविषे परिसमाप्तहोता है एतदर्थ । अन्नं वै प्रजापतिः । > अन्नभी प्रजापति है > ॥ प्र० ॥ हे भगवन्! तिसअन्नको प्रजोत्पादनपना कैसे है ॥ उ० ॥ । ततो ह वै तद्रेतः । > ताते

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाःप्रजायन्त इति १४ ॥

प्रसिद्धही रेतहोता है > अर्थात् भोजन किया जो अन्नहै तिस अन्नसे सर्वलोक विख्यात मनुष्यका बीजरूपरेत (वीर्य) होता है ७ [यहांपुरुषके वीर्यका वाचीरेत शब्द है सो स्त्री के रजरूप शोणित के भी ग्रहणार्थ में है । क्योंकि वीर्य रूपताकरके दोनों को तुल्यत्व है ताते] ७ सो प्रजाका कारण है ८ । तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति । ८ तिससे यह प्रजा उत्पन्न होतीहै > ७ अर्थात् तिस अन्नके परिणाम रेतसे यह मनुष्यादि प्रजा भलीप्रकारसे उत्पन्न होती है॥ १४॥हे सौम्य!हे कबन्धिन्!तैंनेजोप्रश्न कियाथा कि । कुतोह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्ते । ८ किससे यह प्रजा उत्पन्नहोती है > सो उक्तप्रकार दिनरात्रिपर्यन्त चन्द्रसूर्य्य रूप दोनों आदिकके कृमसे अन्नरूप रेतद्वारा सर्वप्रजा उपजे हैं ऐसा श्रुतिने निर्णयकिया १४ ॥

१५ ॥ हे सौम्य ! जब श्रुतिके सिद्धान्त से उक्तप्रकार है तब तद्येह तत्प्रजापतिव्रतंचरन्ति । ८ जो प्रसिद्ध तिस प्रजापतिके व्रतको करता है > । अर्थात् श्रुति सिद्धान्तप्रमाण जो प्रसिद्ध गृहस्थ है सो तिस ऋतुकालविषे कि , श्रुतिशास्त्राचार्योंने नियम किया है, स्त्रीसहगमनरूप प्रजापति नामक व्रत तिसको करते हैं ७ । ते मिथुनमुत्पादयन्ते । ८ सो दोको उपजावते हैं> ७ अर्थात् जो पुरुष उक्तलक्षणवाले प्रजापति के व्रतको करते हैं सो पुत्रको पुत्रीरूप जोड़ेको उपजावते हैं । यहउनको अदृष्टफल है अरु चन्द्रमण्डलरूप ब्रह्मलोक उनको अदृष्टफलहै ॥ प्र० ॥ हेभगवन् ! जब केवल ऋतुकालमें भार्यागमनरूप प्रजापति व्रत के आचरण मात्रसेही चन्द्रमण्डलरूप अदृष्ट फलकी प्राप्तिहोती है तब इसव्रतवाले जो मूर्ख पुरुष हैं कि जो तपादिक नहीं जानते तिनकोभी उक्तफलकी प्राप्तिहोगी ॥ उ० ॥ हे सौम्य! तपादि

तद्येह तत्प्रजापतिव्रतंचरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषांतपो ब्रह्मचर्य्यंयेषुसत्यं प्रतिष्ठितम् १५ ॥

साधन रहित केवल यथाविधि ऋतुकाल में भार्यागमन मात्र प्रजापतिव्रत के करने से चन्द्रलोकरूप ब्रह्मलोककी प्राप्ति नहीं किन्तु । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्य्यंयेषु सत्यं प्रतिष्ठितम् । < जिनको तप ब्रह्मचर्य्य है अरु जिनविषे सत्य वर्त्तता है तिनकोही यहब्रह्मलोक है > अर्थात् जिन पुरुषोंको कृच्छ्रादि तप, बारहवर्षतक पढ़ेहुये वेदकी समाप्तिरूप स्नातक व्रतादि > अरु ऋतुकाल बिषे अरु अन्यकालबिषे मैथुनका असमान आचरणरूप ब्रह्मचर्य्य है । अरु जिनबिषे मिथ्याभाषणका त्यागरूप सत्य अव्यभिचारतासे वर्त्तता है । अर्थात् जो गृहस्थ पुरुष यथासमय कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तपको करते हैं अरु परस्त्री गमन के त्यागपूर्वक केवल ऋतुकालमेंही स्वभार्या गमनरूप ब्रह्मचर्यको करते हैं अरु जिनबिषे असत्य भाषण का त्यागरूप सत्य निरन्तर वर्त्तता है । ऐसे जे इष्टापूर्त्तादि धर्माचरण पूर्वक प्रजापति व्रतरूप दक्षिणायन मार्गके चलनेवाले पुरुषहैं तिनहीं को यह चन्द्रमण्डलबिषे पितृयाणरूप ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप अदृष्टफलहैं १५ ॥

१६ ॥ हे सौम्य ! अब और श्रवण करो जो शुद्धहै अर्थात् चन्द्रमा के ब्रह्मलोकवत् मलसंहित अरु वृद्धिक्षयादिक दोषकरके युक्तनहीं अरु सूर्य्यकरके उपलक्षित उत्तरायणरूप प्राणकाआत्मभाव, अर्थात् सो सर्वका भोक्ता प्रजापति प्राण मैं हौं ऐसाभाव है यह तिनका है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! यह किनका है ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! । न येषु जिह्ममनृतं न माया च । < जिन विषे कुटिल भाव अरु असत्य नहीं पुनः माया नहीं > अर्थात् जैसे गृहस्थ पुरुषोंको अनेक विरुद्ध व्यवहारिक प्रयोजनवाला होनेसे कुटिल

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न मायाचेति १६ ॥

इति प्रश्नोपनिषद्गत प्रथमप्रश्नः १ ॥

भाव अवश्य होताहै तैसे जिनपुरुषों बिषे कुटिलभाव नहीं। अरु जैसे गृहस्थ पुरुषको क्रीड़ा (रमण) हास्यादि व्यवहारके समय असत्यभाषण निषेध करनेयोग्य नहीं । तैसे जिनपुरुषों बिषे क्रीड़ाआदिक व्यवहार के अभावसे सो तन्निमित्तक असत्य भी नहीं अरु जिनपुरुषों बिषे गृहस्थोवत् माया अर्थात् कपट अथवा असत्यादि दोषोंवत्अन्य दोषनहीं । हे सौम्य ! इसप्रकार जिन ब्रह्मचारी वानप्रस्थ अरु संन्यासीरूप ८ [यहां संन्यासीपद करके परमहंसों से इतर जे कुटीचक बहुदकादि हैं तिन्हों का ग्रहण है क्योंकि उन परमहंसोंको ब्रह्मलोकसे भी अशेष वैराग्य है ताते] ७ अधिकारियों बिषे क्रीड़ादि निमित्तों के अभाव से असत्यादि दोष नहीं ७ । तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको । ८ तिन का यह निर्मल ब्रह्मलोक है ७ ८ अर्थात् जिनपुरुषोंमें क्रीड़ादि निमित्तके अभावसे असत्यादि दोषोंका भी अभावहै तिनपुरुषों का निर्मल साधनोंके अनुसार यह रजतमादिदोषरहित निर्मल ब्रह्मलोकहै । इति । ८ ऐसी ७ यह प्राणादिकोंकी उपासनासहित इष्टापूर्त्तादिकर्म करनेवालेकी उत्तरायणरूप गति है अरु पूर्वकहा जो चन्द्रलोकरूपी ब्रह्मलोककी प्राप्ति सो केवल कर्मके करने वाले जनोंकी दक्षिणायन गतिहै १६ ॥

इतिप्रश्नोपनिषद्गतप्रथमप्रश्नः भाषाटीकासमाप्ता ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत द्वितीयप्रश्नः ॥

ॐ अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत् प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति १ । १७ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत द्वितीय प्रश्न ॥
भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य ! [अब यहांसे अन्य द्वितीय अरु तृतीय इन दो प्रश्नोंके कहेहुये प्रथम प्रश्नसे जो सम्बन्धहै सोकहतेहैं।प्रथमप्रश्न बिषे प्राणको भोक्ता अरु प्रजापतिकहाहै तहां प्राणको जे श्रेष्ठपना भोक्तापना प्रजापतित्वपना कहाहै तिन आदिगुणोंके निर्धारणार्थ यह द्वितीय प्रश्नहै क्योंकि (अत्ता विश्वस्य सत्पतिः) < भोक्ता जो है सो विश्वका श्रेष्ठ पतिहै > ऐसा इस द्वितीय प्रश्नके ११ वें वाक्यसे कहाहै करु (एषोऽग्निस्तपति) < यह अग्निरूप हुआ तपताहै > यह इस द्वितीय प्रश्नके पांचवें वाक्यसे आरंभ करके (अराइव रथनाभौ प्राणे सर्व्वं प्रतिष्ठितं) < रथकी नाभि बिषे अराओंवत् प्राणबिषे सर्व यह स्थितहै > इस षष्ठवाक्यसे अरु (प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे) प्रजापतिरूप तूही गर्भविषे विचरताहै अरु माता पिताके तुल्यहुआ जन्मता है इस सप्तमवाक्यसे प्राणको प्रजापति आदि प्रतिपादन कियाहै ताते प्राणका प्रजापतित्वपना अरु अन्नका भोक्तापना निश्चय करने योग्यही है । अरु यह प्रजापतिपनेका अरु भोक्तापनेका जो कथनहै सो प्राणके अन्य गुणोंका उपलक्षणहै । यहांयहभाव है कि प्रथम प्रश्नबिषे कहीगई जे कर्म उपासनाकी गति तिसके श्रवणसे वैराग्यशीलभये पुरुषकोभी चित्तकी एकाग्रता (वृत्तियों का निरोध) भये विना आगे आत्मतत्त्वके श्रवणकी असिद्धताहै

तातें उनपुरुषों के अर्थ प्राणकी उपासना के लिये अब द्वितीय अरु तृतीय इन दोनों प्रश्नोंका आरंभहै। तिनमें भी प्राणके ज्येष्ठ श्रेष्ठत्वपने अरु भोक्तापनेके अरु प्रजापति आदि गुणों के निर्ण-यार्थ द्वितीयप्रश्नहै। अरु तिस प्राणकी उत्पत्त्यादिकों के निर्णय पूर्वकतिसकी उपासनाकेविधानार्थ तृतीयप्रश्नहैयहभी जानना]॥

१॥ हे सौम्य! प्रथम प्रश्नविषे (प्राणोऽत्ता प्रजापतिः) ऐसा कहाहै। तातें अब उस प्राणका भोक्तापना अरु प्रजापतिपना यह दोनों इसही शरीरविषे निश्चयकरनेको योग्यहैं इस अर्थ के जतावने के अर्थ इस द्वितीय प्रश्नका आरंभकरते हैं (अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ) (अनन्तर इसको निश्चय करके विदर्भ देशका निवासी भार्गव प्रसिद्ध पूछताभया) अर्थात् कबन्धीमुनि के प्रश्न समाप्तहोने के पश्चात् इस सर्वज्ञ पिप्पलादमुनिको उनकेवाक्यमें निश्चय पूर्वक विदर्भदेशका निवासी भार्गवनाम-वालामुनि सर्व में प्रसिद्ध जे प्राण तिस विषयक प्रश्नकरता भया कि (भगवन् कत्येवदेवाः प्रजां विधारयन्ते) (हे भगवन्! कित-नेहीदेवता प्रजाको विशेष करके धारणकरेहैं) अर्थात् हे भगवन्! आकाशादि पांच भूत अरु चक्षुरादि पांच ज्ञानेंद्रियां अरु वागादि पांच कर्मेंद्रियां अरु मन अरु प्राण यह सप्तदशतत्त्वात्मक लिंगा-भिमानि प्रत्येक तत्त्वके मिलके सप्तदश देवताहैं तिन विषे कितने देवता इन शरीररूप प्रजाको [यहां प्रजा शब्दका अर्थ शरीर-ही ग्रहणकरने योग्यहै जीव नहीं क्योंकि जीवको प्राणधारित्व-पनाहै एतदर्थ प्राण इन्द्रियां करके जीव धारण करने योग्य नहीं तातें यहां प्राणकरके धारणकरने योग्य शरीररूप प्रजाही है] धारते हैं। अरु (कतरएतत् प्रकाशयन्ते) (कितने इसको प्रकाश करते हैं) अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय अरु कर्मेंद्रिय करके पृथक् २ भावको प्राप्तभये जे देवता तिनके मध्यकौन से दे-वता इस अपने माहात्म्य के प्रकटकरने रूप प्रकाशको करते हैं अर्थात् [(पाकंपचतीति) (पाकको पचता है) तद्वत् अन्-

तस्मै सहोवाचाकाशो ह्वा एष देवो वायुरग्निराप: पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम २ । १८ ॥

काशके देने आदिक अरु अवलोकन आदिक जो आकाशादि भूतों का अरु इन्द्रियरूप देवताओं का जो अपना अपना माहात्म्य है तिसको लोकों विषे प्रकटकरने रूप प्रकाशको कौन से देवता करते हैं] अरु ८ । कः पुनरेषां वरिष्ठ इति । (पुनः इनके मध्यश्रेष्ठ कौनहै;) फेरइनकार्य करणरूप पूर्वोक्त सप्तदश देवताओंके मध्य अतिशय कीर्त्तिवाला अरुश्रेष्ठ देवकौन है १ । १७ ॥

२ ॥ हे सौम्य! उक्तप्रकार जब पिप्पलाद मुनि से प्रश्नकिया तब । तस्मै स होवाच । (तिसको सो स्पष्ट कहतेभये ; अर्थात् तिस प्रश्नकर्त्ता भार्गवमुनिके अर्थ सो पिप्पलादनामा मुनीश्वर आचार्य प्रसिद्धकहतेभये कि हे भार्गव! ।आकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च । (आकाश प्रसिद्ध यह देवहै वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाक्, मन, चक्षु, श्रोत्र, (यह देवहैं) ; अर्थात् आकाश प्रसिद्ध यह देवहै [यहां यह देव ऐसा जो कहाहै सो आगे कहने के कथन आदि व्यवहार की सिद्ध्यर्थ अरु चेतनपने की (यहचेतनहै) इस) सम्भावनाके अर्थ यहां । देव । विशेषणहै । अरु देव, इस पदसे जो अभिमानी का कथन है सो तो आकाशादिकों के अभिमानी देवताओं के ग्रहणार्थ है अन्य देवताओं के ग्रहणार्थ नहीं । ताते यहां । देव । इस विशेषण का वायु आदिकों से भी सम्बन्ध है] वायुदेव है, अग्नि देवहै जल देवहै, पृथिवी देवहै, वाणी उपलक्षणकरके पांच कर्मेंद्रियां देवहैं, मन उपलक्षण करके वृत्तिचतुष्टयात्मक अन्तःकरण देवहै चक्षु अरु श्रोत्र इन उपलक्षणकरके पांच ज्ञानेंद्रियां यहदेव हैं, । अर्थात् शरीर को आरम्भ करनेवाले आकाशादि पांच भूत अरु वाणी अरु मन अरु चक्षु अरु श्रोत्र इत्यादि सर्व ज्ञानेन्द्रियां अरु

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । मामोहमापद्यथाऽहमेवैतत्पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्यविधारयामीति ३ । १९ ॥

कर्मेंद्रियां अरु अन्तः करणरूप,देव,शरीर को धारण करतेहैं,तिन देवताओं के मध्य पांच कर्मेंद्रियां अरु पांच ज्ञानेन्द्रियांरूप जो देवहैं सो अपने माहात्म्य को प्रकटकरनेरूप (दर्शनश्रवणादि रूप) कार्यको करतेहैं। अरु कार्यरूपदेव अरु करणरूपदेव अर्थात् [देहाकारसे परिणाम को प्राप्तभये जे आकाशादिपञ्च महाभूत सो कार्यरूप देवताहैं अरु ज्ञानेंद्रियां अरु कर्मेंद्रियां यह करणरूप देवहैं] । ते प्रकाश्याभिवदन्ति । ८ सो देव प्रकाशकरके कहते भये ; अर्थात् सो देव अपने माहात्म्यको प्रकाशकरके अपने विषे श्रेष्ठत्वका अभिमानकरके परस्पर ईर्षाको करतेहुये कहते भये ॥ प्र० ॥ क्या कहते भये ॥ उ० ॥ । वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम २ । ८ हम इसशरीरको अशिथिलकरके स्पष्ट धारतेहैं ; (ऐसे कहतेभये) अर्थात् जैसे प्रासाद (बड़ेऊँचेगृह) को स्तम्भ धारतेहैं तैसे हम इस कार्य कारणात्मक संघातरूपशरीर को शिथिलकिये विनाही स्पष्ट धारतेहैं, इसप्रकार अपने२ विषे महत्त्वपनेका अभिमानकरके इन्द्रियरूप देवतापरस्पर कहतेभये २।१८ ॥ हे सौम्य! इन्द्रियों का परस्पर अरु प्राणका जो संवाद अरु प्राणको सर्व में ज्येष्ठ श्रेष्ठपना यह छान्दोग्य उपनिषद् के चतुर्थ प्रपाठक में एक आख्यायिकारूपसे सविस्तर कहाहै ॥ ३ ॥

३ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार साभिमानहुये अपने २ श्रेष्ठत्वके अर्थ ईर्षापूर्वक परस्पर में विवाद करते जे देवता । तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । ८ तिनको मुख्य प्राण कहताभया ; अर्थात् तिन असत्य अभिमान करनेवाले इन्द्रियांरूप देवोंको सर्वमें मुख्यदेव जो प्राण सो कहताभया कि ८ । मा मोहमापद्यथा। ८ मोहको मत प्राप्तहो ; अविवेकता के वश भये इस असत्य अभिमानको

तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादूर्द्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्चप्रतिष्ठमाने सर्व्व एव प्रतिष्ठन्ते तद्यथा मक्षिका मधुकर राजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वाएवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ४ । २० ॥

मतकरो । देखो । अहमेवैतत् पञ्चधाऽऽत्मानंप्रविभज्य । (मैंहीं इस अपने आपको पांच प्रकारसे विभागकरके ; (मैंहीं इस अपने आपको, अपानादि भेदसे पांच प्रकार होयके (। एतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति ३ । (इस शरीरको अशिथिलकरके स्पष्टधारता हौं ; इस कार्य कारणात्मक संघातरूप शरीर को शिथिल न करके स्पष्ट धारताहौं ताते तुम व्यर्थ अभिमान मतकरो ३।१६॥

४ ॥ हे सौम्य! उक्तप्रकार जब प्राणने सर्व इन्द्रियों से कहा तब । ते अश्रद्दधाना बभूवुः । (वे अश्रद्धावान् होते भये ; अर्थात् सो इन्द्रियरूप देवता बिचारकरतेभये कि जो यह प्राण कहताहै कि मैं पांचप्रकार होयके इस शरीरको धारता हौं सो असंभवहै । इसप्रकार प्राणके वाक्यमें अविश्वासवान् होते भये तब ; । सोभिमानादूर्द्ध्वमुत्क्रमत इव । (सो अभिमान से ऊंचे गमनकरतेहुयेवत् अर्थात् सो प्राण तिन इन्द्रियरूप देवतों के अपनेवाक्य में अविश्वासको देख आप अभिमानसे ऊंचे को जातेहुयेवत् होताभया अर्थात् रोष (क्रोध) सहित इन्द्रियों की अपेक्षाके रहितहुआ इस संघातरूप शरीरको त्यागताभया हे सौम्य! उक्तप्रकार इस शरीरसे प्राणके निकसजाने से जो वृत्तान्तहुआ तिसको अब वेद दृष्टान्तसे स्पष्ट करे हैं । तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्व एव प्रतिष्ठन्ते । (तिसके निकसने से पीछे अन्य सर्वही जाते भये पुनः तिसके स्थितहुये सर्वही स्थितहोतेभये (अर्थात् तिस

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एषपर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी। रयिर्देवः सदसच्चाऽमृतञ्चयत् ५। २१॥

प्राण के शरीर से निकसने पीछे और सर्व चक्षुरादि इन्द्रियां भी जाते भये अरु पुनः तिस प्राणके तूष्णीं (चुप) होके बैठने से सर्वही तूष्णीं होके बैठतेभये॥ दृष्टान्त। यथा मक्षिका मधुकर राजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वा एवोत्क्रामन्ते। < जैसे मक्षिका मधुकर राजाके निकसिजाने से सर्वही निकलजाते हैं > अर्थात् जैसे मधु (शहद) की मक्खी अपने राजा मक्खीके निकलजाने से सर्वही उस स्थान को त्याग के निकलजाती हैं। अरु। तस्मिंश्चप्रतिष्ठमाने सर्व्वा एव प्रातिष्ठन्त। < तिसके स्थितहुये सर्वही स्थित होते हैं > अर्थात् तिस मधुकरराजा मक्खी के स्थितहुये अन्य सर्व मक्खी स्थित होतीहैं। हे सौम्य! जैसे यह उक्त दृष्टान्त है। एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ४। < ऐसे वाणी (कर्मेंद्रियां) मन, चक्षु अरु श्रोत्र, (ज्ञानेन्द्रियां) सो प्रीतिसे प्राणकी स्तुति करतेभये > अर्थात् उक्त दृष्टान्तप्रमाण वाणी मन चक्षु आदि सर्व इन्द्रियांरूप देव प्राण के माहात्म्य को जान तिस बिषे प्रतीतवान् होय अपने असत्य महत्त्व के अभिमान को त्याग प्रसन्नता पूर्वक प्राण की स्तुति करते भये ४। २०॥

५॥ हे सौम्य! इन्द्रियां कहतीहैं कि। एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो। < यह अग्नि हुआ तपताहै यह सूर्य्यहै यह मेघहै; अर्थात् यह प्राण अग्निरूप हुआ तपताहै, तैसे यह सूर्य्यरूपहुआ प्रकाशताहै, तैसे यह मेघरूपहुआ वर्षा करताहै। अरु। मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतञ्चयत् ५। < यह इंद्रहै यह वायु है, यह पृथिवी है, यह चन्द्रदेव है, सत्, असत्, अरु अमृत जो है, (सो सर्व प्राणही है) > यह इन्द्र होयके प्रजाका पालन करता है, अरु असुर राक्षसों का नाश करताहै, अरु यह

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्व्वं प्रतिष्ठितम् । ऋचो यजुंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ६ । २२ ॥

आवह (उड़ायके लेजानेवाला) अरु प्रवाह (वेगसे चलनेवाला) आदिक सात गुणोंके भेदसे भेदवालाहुआ वायु मेघ अरु नक्षत्रादिकों को भ्रमावताहै, अरु यह पृथिवीरूप होके सर्वको धारताहै। अरु यह देव चन्द्रमा होयके ओषधि आदिकोंका पोषण करताहै। हे सौम्य ! विशेष क्या कहिये सत् कहिये सूक्ष्म अमूर्त्त अरु असत् कहिये स्थूल मूर्त्त अरु देवताओं की स्थितिका कारणभूत जो अमृत है सो भी प्राणही है ५ । २१ ॥

६ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियांरूप देवता विचार करते भये कि । अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । < रथकी नाभि बिषे अरान्वत् प्राणबिषे सर्व स्थितहै > अर्थात् जैसे रथके चक्र (पहिया) के मध्य काष्ठको रथनाभि कहते हैं तिसबिषे अरा (खड़ीलकड़ियां) स्थित होती हैं । तैसे इस उपनिषद् के षष्ठ प्रश्नके । प्राणाच्छ्रद्धा खं वायुर्ज्योतिः । इत्यादि । < प्राणसे श्रद्धा आकाश वायु तेज > इत्यादिकों को सृजताभया इस चतुर्थवाक्य प्रमाण श्रद्धा आदिले नामपर्यंत सर्वका संघातरूप शरीर अपनी स्थितिकालमें प्राणबिषे स्थितहैं । अरु तैसेही । ऋचोयजुंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्मच ६ । < ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अरु यज्ञ क्षत्रिय अरु ब्राह्मण > अर्थात् जैसे श्रद्धा आदिक कलाप्राणबिषे स्थितहैं, तैसे ऋग् यजु साम यह तीन वेदके तीन प्रकार के मन्त्र, अरु तिन मन्त्रों करके साधने योग्य अश्वमेधादि यज्ञ, अरु सर्वके पालन कर्त्ता अरु दंड के दाता क्षत्रिय जाति राजा, अरु यज्ञादिक वैदिक कर्मोंके कर्ताओं में मुख्य अधिकारी सर्वोत्तम ब्राह्मणजाति, यह सर्व प्राणके आश्रय होनेसे प्राणही हैं ६ । २२ ॥

७ ॥ हे सौम्य ! दो मन्त्रसे कहेप्रकार विचारके सर्व इन्द्रियां प्राणकी स्तुति करतीभई । प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रति-

प्रजापतिश्चरसि गर्भेत्वमेव प्रतिजायसे तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमाबलीं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ७ । २३ ॥

देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा । ऋषिणाञ्चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ८ । २४ ॥

जायसे । (जो प्रजापतिहै सो तूही है गर्भबिषे बिचरता है अरु सदृशहुआ जन्मता है) अर्थात् कहतीभई कि हे प्राण! जो सर्व का प्रजापतिहै सोभी तूही है अरु पिताके गर्भ में वीर्यरूपसे अरु माताके गर्भबिषे पुत्ररूपसे जो बिचरता है अरु जो माता पिता केही सदृशहुआ जन्मताहै सो तूही जन्मता है, अर्थात् हे प्राण! तुझको सर्वरूप प्रजापति होने से तेरा माता पितापना प्रथमही सिद्धहै, एतदर्थ तू सर्व देह अरु सर्व देहवालों के आकारों से ढकाहुआ एक प्राणरूप सर्वात्मा है । अरु ८ । तुभ्यंप्राणः प्रजास्त्विमाबलीं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ७ । (हे प्राण ! यह प्रजा तो तेरेअर्थ बलि देते हैं जो प्राणोंकेसाथ सर्व शरीरोंप्रति स्थितहै ;) हे प्राण ! यह मनुष्यादि सर्व प्रजा सो चक्षुरादिद्वारा रूपादि विषयरूप बलिदान (कर) तेरेही अर्थ देते हैं, क्योंकि जो तू चक्षुरादि इन्द्रियों साथ मिलके अरु उन सर्व को अपने आश्रय धारके सर्वका भोक्ताहुआ सर्व शरीरों बिषे स्थितहै, एतदर्थसर्व तेरेही अर्थ बलिदान (कर) देतेहैं। इतिसिद्धम् ७। २३ ॥

८ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहती हैं कि हे प्राण ! देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा । (देवताओं के मध्य वह्नितम है पितरों की प्रथम स्वधा है) अर्थात् इन्द्रादि देवताओं के मध्य तू , वह्नितम , कहिये अतिशय करके हवन किये द्रव्यों को प्राप्त करनेवाला है । अरु पितरों के नांदीमुखश्राद्ध बिषे (जो कि शुभकार्यमें होताहै) जो स्वधारूप अन्नहै सो देवताओंके निमित्त हवनद्रव्य देनेसे प्रथम होताहै एतदर्थ पित-

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता । त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषाम्पतिः ९ । २५ ॥

रों के अर्थ प्रथम जो स्वधा सो तू है। अर्थात् पितरों के अर्थ स्वधान्नका प्राप्त करनेवाला तू है । अरु । ऋषिणाञ्चरितंसत्यमथर्वांगिरसामसि । ‹ इन्द्रियों का अंगिरसरूप अथर्वणनाम वाले (भये) ऋषियों (इन्द्रियों) का चरितसत्य (तूही है) › अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियरूप अंगिरस ‹ [अथर्वण नामवाले हुयेभी उन ऋषियों का] अर्थात् ,,ऋष,, जो धातुहै सो गति (ज्ञान) रूप अर्थ बिषे वर्त्तता है । एतदर्थ ऋषिपदका ज्ञान के जनक चक्षुरादिक इन्द्रियरूप अर्थ है अरु इन्द्रियरूप प्राणके अभावहुये अंगों के रसका शोषणहोता देखने से उन इन्द्रियरूप प्राणोंको अंगिरसपना है । अरु । प्राणो वा अथर्वाइति श्रुतिः । ‹ प्राण वा अथर्वा है › इस श्रुतिके प्रमाण से तिन इन्द्रियोंको अथर्वापना है। यद्यपि मुख्यप्राण का अथर्वापना श्रुतिने कहाहै, तथापि चक्षुरादि इन्द्रियों को भी उस मुख्यप्राण के अंशरूप होनेसे अथर्व शब्दका अथर्वान् ,यहबहुतपना है, [इतिभावः] चरित अरु देह धारणादिक बिषे उपकार करनेरूप सत्यतूहीहै ८ । २४ ॥

९॥ हेसौम्य!पुनःइन्द्रियां कहतीभई कि । इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता । ‹ हे प्राण ! इन्द्र तू है, रुद्र तू है, रक्षाकरने वाला तू है › अर्थात् हे प्राण ! वीर्य (सामर्थ्य) करके इन्द्र (परमेश्वर) तू है, अथवा ‹ हे प्राण! अपने सामर्थ्यकरके सर्व देवताओं का अधिपति इन्द्र तू है › अरु संहारकरने के सामर्थ्य से जगत् का हरण करनेवाला रूप तूही है, अरु स्थितिकाल बिषे सौम्य रूपहुआ जगत्का पालक विष्णु भी तूही है । अरु । त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषाम्पतिः ९ । ‹ तूअन्तरिक्षबिषे विचरता है (अरु) ज्योतियों का पति सूर्य्य तू ही है › अन्तरिक्षादि आकाश बिषे निरन्तर विचरनेवाला तूही है । अरु उदय अरु

यदात्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणतेप्रजाः। आनन्दरूपा स्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति १०॥

अस्त होनेवाले सर्व ज्योतिगणों का अधिपति सूर्य तूही है॥ इति सिद्धम् ९। २५॥

१०॥ हे सौम्य! पुनः इन्द्रियां कहती भई कि। हे प्राण! (यदात्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणते प्रजाः) < जब तू वर्षता है तब यह प्रजा प्राणकी (चेष्टाकरे है) > अर्थात् जब तू मेघ होयके वर्षा करता है तब अन्न को पाय के यह प्रजा प्राण की चेष्टाको करे है। अथवा (यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्रजाः) < हे प्राण! तेरी यह प्रजा तेरे अन्नसे वृद्धिको पाईहुई अरु तेरी वर्षा के देखनेमात्रसेही > (आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति १०) < आनन्दरूप स्थितहै यथेष्ट अन्नहोगा > आनन्दको प्राप्त भये स्थितहै, क्योंकि यथेष्ट (इच्छाके अनुसार) अन्नहोगा॥ ऐसा तिस बर्षा के देखनेवाली प्रजा का अभिप्राय है॥ इति सिद्धम् १०। २६॥

११॥ हे सौम्य! पुनः इन्द्रियां कहतीभई कि (व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः) < हे प्राण! व्रात्य तू है एकर्षिहुआ भोक्ता तू है > अर्थात् हे प्राण (एतस्माज्जायते प्राणः) तुझको प्रथम उत्पन्न होनेसे तुझसे पूर्व तेरा संस्कार करनेवाला अन्य कोई नहीं ताते तू संस्कार रहित व्रात्य (असंस्कारी) है अरु (जो ऐसा कहे कि जिससे प्राण उत्पन्नभयाहै सोई उसका संस्कार करनेवालाहै 'सो बने नहीं' क्योंकि जिस आत्मासे प्राण उत्पन्नभया है सो अक्रियहै)। अरु (एकऋषिरत्ता) < एकर्षि हुआ भोक्ता तू है > अर्थात् एकर्षिनामवाला अग्निरूपहुआ सर्व हविषादिकों का भोक्ता तू है। अरु (विश्वस्य सत्पतिः) < विश्व का सत्यपति तू है > अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का प्रत्यक्ष विद्यमान पति तू है। अथवा विश्वका श्रेष्ठपति तू है। अरु (वयमाद्यस्य

व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः । व
यमाद्यस्यदातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ११ । २७॥
याते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या चक्षुषि ।
याचमनसिसन्तताशिवांतांकुरुमोत्क्रमीः १२। २८ ॥

दातारः । < हम भक्षणके दाता हैं > अर्थात् हम कर्मी उपासक लोग तेरे भक्षणकेयोग्य हविषा (हवनकरनेयोग्य वस्तु) के दाता हैं । अरु । पिता त्वं मातरिश्वनः ११ । < हे वायो! तू पिता है > अर्थात् हे अन्तरिक्ष में चलनेवाले वायु (प्राण)! तू हमारा पिता है । अथवा तू वायुका पिताहै, एतदर्थ तुझको सर्व जगत्का पितृत्व सिद्धहै क्योंकि तू आकाशरूप हुआ वायुआदि अस्मदादिकों का जनक है ताते ११ । २७ ॥

१२ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहती हैं कि विशेष कहने करके क्याहै । हे प्राण । या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता । < जो तेरी तनूवाणी बिषे स्थित है > अर्थात् जो तेरी [अपानरूप] मूर्त्ति वक्ता (कहनेवाली) होनेसे वक्तृत्वरूप चेष्टा करतीहुई वाणी रूप स्थानबिषे स्थितहै । अरु । या श्रोत्रे या चक्षुषि । < जो श्रोत्र बिषे जो चक्षुबिषे > जो तेरी [व्यानरूप] मूर्त्ति श्रोता होने से श्रवणरूप चेष्टा को करती हुई श्रोत्रबिषे स्थित है । अरु जो तेरी [प्राणरूप] मूर्त्ति द्रष्टा होनेसे दर्शनरूप चेष्टाको करतीहुई चक्षु बिषे स्थित है अरु । याच मनसि सन्तता । < पुनः जो मन बिषे (स्थितहै) तिसको शान्तकर > फिर जो तेरी [समानरूप] मूर्त्तिमती होने से संकल्पादि व्यापारको करती हुई मनबिषे स्थित है तिसको तू शान्तकर । अरु । शिवांतां कुरुमोत्क्रमीः । < निकलने से अमंगल मतिकरे > तू अपने निकलजाने से इन स्थानों को अमंगल (निकम्मे) मतकर ॥ । सप्राण स्तच्चक्षुः सव्यानस्तच्छ्रोत्रंसोऽपानः सा वाक् ससमानस्तन्मन इतिश्रुतेः । १२ । २८ ॥

प्राणस्येदंवशेसर्वंत्रिदिवेयत्प्रतिष्ठितम् । मातेव पुत्रान्रक्षस्वश्रीश्चप्रज्ञाश्चविधेहिन इति ॥ १३ । २९ ॥

इति प्रश्नोपनिषदि द्वितीयप्रश्नः २ ॥

---

१३ ॥ हे सौम्य! पुनः इन्द्रियां परस्परमें कहती भई कि अब बहुत कहनेसे क्या है । प्राणस्येदंवशेसर्वं । < यहसर्व प्राणकेव-श है > अर्थात् इस लोकविषे यह जो कुछ प्रत्यक्ष उपभोग प्रकट है सो सर्व प्राणकेही वशमें वर्तता है । अरु । त्रिदिवेयत् प्रतिष्ठितम् । < स्वर्गविषे जो स्थित है > अर्थात् इस लोककी अपेक्षा अदृष्ट जो स्वर्गविषे देवतादिकोंका अमृतादि उपभोगरूप जगत् है तिसका भी पालक प्राणही है । हे सौम्य! इस प्रकार विचार के इन्द्रियां पुनः कहती भई कि हे सर्व में श्रेष्ठ, सर्वके पालक, प्राण!। मातेवपुत्रान्रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाश्च विधेहिन इति १३ । < मातावत् पुत्रोंका पालनकर अरु लक्ष्मीको अरु बुद्धिको हमारे अर्थ दे > अर्थात् तू जैसे माता अपने आश्रित बालकों का पालन रक्षा करे है तैसेही तेरेही आश्रित जो हम तिन अपने पुत्रोंकी रक्षाकर । अरु ऋगादि वेदविद्या रूपी ब्राह्मणोंकी ब्राह्मी लक्ष्मी है सो अरु प्रसिद्ध द्रव्य रत्नक्षेत्रादि ऐश्वर्य रूपा क्षत्रियों की लक्ष्मी, यह दोनों लक्ष्मियोंकरके, अरु तेरी स्थिति रूप निमित्तवाली अर्थात् जिस बुद्धिके होने से इस संघातरूप शरीर विषे तेरी स्थिति रहै ऐसी बुद्धि को हमारे अर्थ दे हे सौम्य! इस द्वितीय प्रश्न करके निर्धार किये प्राण के गुण संक्षेप मात्रसे प्रतिपादन किये हैं इस रीतिसे सर्वरूप जो प्राणहै सो वाक्आदि इन्द्रियों करके स्तुतिकरनेद्वारा प्रकट भई जो उस की महिमा तिस महिमावाला है अरु सोई प्रजापति है । इति निश्चितम् १३ । २६ ॥

इतिप्रश्नोपनिषद्गताद्वितीयप्रश्नभाषाटीकासमाप्ता ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गततृतीयप्रश्नः ॥

अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ भगवन् कुतएष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्छरीरेआत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथंबाह्यमभि धत्ते कथमध्यात्ममिति १ । ३० ॥

अथप्रश्नोपनिषद्गततृतीयप्रश्नभाषाटीका प्रारभ्यते ३ ॥

हे सौम्य! पूर्वोक्तप्रकार इन्द्रियों करके की हुई स्तुतिद्वारा प्राण का प्रजापति पना अरु भोक्तापना आदिक गुणों के समुदायका निर्धारकरके, अब प्राणकी उत्पत्ति आदिकों का निर्णय करतेहुये तिसकी उपासनाकेविधानार्थ इसतृतीयप्रश्नका आरंभकरतेहैं ॥

१ ॥ हे सौम्य! । अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ । < तिसके अनन्तर इसको अश्वलका पुत्र कौसल्य नामवाला मुनि पूंछताभया > अर्थात् कबन्धी मुनि अरु भार्गवमुनि के दोप्रश्नोंद्वारा प्राणके प्रजापतित्व आदि गुणों के निर्धार होने के अनन्तर' इस पिप्पलाद मुनीश्वररूप आचार्य को अश्वलमुनिकापुत्र कौसल्य नामवाला मुनि प्रश्नकरताभया कि । भगवन् कुत एष प्राणो जायते । < हे भगवन्! यह प्राण किससे उपजताहै > अर्थात् हे भगवन्! हे सर्वज्ञ! यह प्राण, कि जिसकी महिमा आपने दो प्रश्नोंके उत्तर करके निर्धारित किया, सो किसकारण से उपजता है। अरु < । कथमायात्यस्मिञ्छरीरे । > < कैसेइस शरीरबिषे आवताहै > अर्थात् ऽ उपजाभया किसप्रकार इसशरीरबिषे आवताहै, अर्थात् प्राणको शरीर धारणका निमित्त कौनहै । अरु ऽ । आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते । < अपने आपका विभागकरके कैसे स्थित होताहै > ऽ एक अपने आपको कईएक विभागकरके किस

तस्मै सहोवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसि तस्मात्तेऽहं ब्रवीमीति २। ३१॥

प्रकार से स्थित होता है । अरु ८। केनोत्क्रमते ।ः किसकरके निकसताहै ;? किस वृत्ति विशेषकरके इस शरीरसे निकसताहै। अरु ८। कथंबाह्यमभिधत्ते । ८बाह्यको कैसे धारताहै;? बाह्य जो अधिभूत अरु अधिदैव तिसको कैसे धारताहै, अर्थात् [प्राणादि पांचवृत्ति भेदवाले प्राणका सूर्य अरु पृथिवी आदि पांचभूत अधिदैव अरु चक्षुरादि पांच इन्द्रियां अधिभूतरूप बाह्यहैं] तिसको यह प्राण कैसे धारताहै। अरु ८। कथमध्यात्ममिति । ८ अध्यात्म को कैसे धारता है ;? अध्यात्मको किसप्रकार धारण करताहै [प्राणादिरूप अन्तर्वर्त्ति जो प्राणकी पांच वृत्तियां हैं सो प्राणका अध्यात्मरूप है यह आगे कहेंगे] १। ३०॥

२॥ हे सौम्य! उक्तप्रकार जब कौसल्य नामवाले मुनिने अपने आचार्यसे प्रश्नकिया तब। तस्मै स होवाच। ः तिसको सो स्पष्ट कहताभया ; अर्थात् तिस प्रश्नकर्त्ता शिष्यको सो सर्वज्ञ पिप्पलादनाम मुनीश्वर स्पष्ट कहताभया कि ८। अति प्रश्नान् पृच्छसि। ः अति प्रश्नोंको पूछताहै ;? हे प्रश्नकर्त्ताओं में कुशल!तू अतिश्रेष्ठ प्रश्नोंको करता है, क्योंकि प्रथम तो प्राणही दुर्विज्ञेय (दुःखसे जानने योग्य) है एतदर्थ उस विषयक जैसे कठिन प्रश्नहोय तैसेही करने योग्य हैं, एतदर्थ तू अति प्रश्नों को पूछताहैं। अरु ८। ब्रह्मिष्ठोसीति। ः ब्रह्मनिष्ठहै ;? एतदर्थही तू ब्रह्मवेत्ताहै ८। तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि २। ः ताते मैं कहताहौं ;? एतदर्थ मैं तेरे ऊपर प्रसन्न भयाहौं तिसकारण से जो तैंने प्रश्न किये हैं तिनका उत्तर मैं तेरे अर्थ कहताहौं तिसको श्रवण कर २। ३१॥

३॥ पिप्पलादउवाच॥। आत्मनः एष प्राणो जायते। ८ आत्मासे यह प्राण उपजताहै ;? हे सौम्य! अब प्रश्नकरनेवाले

आत्मनः एष प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छायैतस्मि न्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ३। ३२॥

कौसल्यनाम मुनिको पिप्पलाद मुनि कहतेभये कि हे कौसल्य! । अप्राणोह्यमनःशुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः। एतस्माज्जायतेप्राणः। जो प्राणमन आदि उपाधि रहित सदाशुद्ध कार्यकारणसे परे अक्षर सत्य परमात्मा है तिससे यह सर्व में श्रेष्ठप्राण उपजता है॥ प्र०॥ कैसे उपजता है॥ उ०॥ । यथैषा पुरुषेछायैतस्मिन्ने तदाततं । (जैसे पुरुष बिषे छाया तैसे तिसबिषे यह समर्पण किया है; हे सौम्य! जैसे मस्तक हस्तपादादि अवयव समुदायरूप पुरुष निमित्त से नैमित्तिकी यह छाया उपजती है। तैसे ही तिस ब्रह्मरूप सत्य अक्षरपुरुषबिषे यह प्राणनामकरके छाया स्थानीय मिथ्यारूपवाला तत्त्वसमर्पित है। अरु ८। मनोकृते नायात्यस्मिञ्छरीरे ३ । (मनकरके किये कर्म निमित्तसे इस शरीर बिषे आवता है; ? देह बिषे जो आवता है सो छायावत् मनके सङ्कल्प इच्छादि वृत्तियोंकरके किये जे कर्म तिन कर्मरूप निमित्तसे इस शरीरबिषे आवता है। पुण्येनपुण्यं लोकंनयति। (पुण्यसे पुण्यलोकको लेजाता है;। यह इसही प्रश्नके सातवें वाक्यसे कहेंगे। अरु ८। तदेव सक्तः सहकर्मणेति। (आसक्त हुआ तिसहीको सहित कर्मके पावता है? अर्थात् यह कर्म करने वाले कर्मीपुरुषका मन जिसफल बिषे आसक्त होताहै तब तिस आसक्तताकरके वे पुरुष तिसही को, कि जिस बिषे आसक्त हैं; कर्मकरके पावते हैं। इसबृहदारण्य के छठे अध्याय की श्रुति बिषे शरीरों का ग्रहण कर्मोंकरकेही साध्य है ऐसाकहाहै३।३२॥

४॥ हे सौम्य! पिप्पलादमुनि कहताभया कि हे कौसल्य! अब दृष्टान्तपूर्वक श्रवणकरो। यथासम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते। (जैसे चक्रवर्तीराजा निश्चय करके अधिकारियों को योजना करता है? अर्थात् जैसे कोईएकचक्रवर्तीराजा अपनेराज्यके निबन्धमें कार्या-

यथासम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते ४। ३३ ॥

ध्यक्षताके योग्य पुरुषोंको निश्चय करके तब उन अधिकारी पुरुषोंको देश विभागसे योजना करताहै अरु कहताहै कि ८। एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्व । < तुम इतने ग्रामके अरु तुम इतने ग्रामके अधिपति होयके स्थितहोउ >ऽ हे कार्य्याध्यक्षताके योग्य पुरुषो!मेरी आज्ञासे तुम इतने ग्रामोंके मंडल देशके अरु तुम इतने ग्रामके मंडल देश के अधिपति होयके देशोंका रक्षण पालन सावधानीसे करते रहो ॥ हे सौम्य! ऽ। इत्येवमेवैष प्राणः इतरान्प्राणान् पृथक् पृथगेवसन्निधत्ते । < ऐसेही यह प्राण इतर प्राणोंको पृथक्२ही योजना करताहै >ऽ इस कहे हुये दृष्टांतके प्रमाण ही, यह जो मुख्य प्राणहै सो चक्षुरादि इन्द्रियरूप अन्य प्राणोंको नेत्रादि यथायोग्य स्थानबिषे दर्शनादि क्रिया करनेके अर्थ भिन्न२ अर्थात् एकका काम दूसरा न करे इस प्रकारसे योजना करता भया। अरु अपने अपानादि भेदरूप इतर प्राणों को गुदादि स्थानोंबिषे मलत्यागादि क्रियाके अर्थ योजना करताहै ४। ३३॥

५ ॥ हे सौम्य!अब मुख्य प्राण अपने अपानादि भेदरूप पांच वायुको जिस २ कार्य्यके अर्थ जिन २ स्थानोंबिषे नियुक्त करता है तिसको श्रवणकरो । पायूपस्थेऽपानं । < गुदा (अरु) लिंगबिषे अपानको > अर्थात् जो गुदाद्वारा मलको अरु लिंग द्वारा मूत्रको त्यागकरनेरूप क्रिया का कर्त्ता अपनाही भेदरूप अपान नामवाला वायु तिसको गुदा अरु लिंग बिषे उक्तकार्यकरनेके अर्थ नियुक्त करता भया ।अरु ८। चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणःस्वयं प्रातिष्ठते । < चक्षुः(अरु)श्रोत्र मुख (अरु) नासिकाबिषे प्राणआप स्थितहोताहै >ऽ तिसही प्रकार दर्शनादि

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयंप्रातिष्ठते मध्येतुसमानः । एषह्येतद्धुक्तमन्नं समन्नयति तस्मादेताः सप्तार्च्चिषोभवन्ति ५ । ३४ ॥

ज्ञानरूप क्रियाका करता हुआ चक्षुः श्रोत्र के कहनेसे ज्ञानेन्द्रियां मुख अरु नासिकासे आवागमन करताहुआचक्रवर्ती राजास्थानीय स्वयं (आप) प्राणस्थितहोताहै । अरु ऽ । मध्येतुसमानः । ‹मध्यबिषे तो समान (वायुहै) › ॰ अपना भेद समान बायु तिसको प्राण अपानके मध्य नाभिरूप स्थानबिषे नियुक्त करताहै । अरु ८ । एषह्येतद्धुक्तमन्नं समन्नयति । ‹ यहही इसभुक्तअन्नको लेजाता है › ॰ यहही वायु भोजन किये अन्नादिकों का रस जो उदरबिषे होता है तिसको सर्व नाडियों प्रति पृथक् २ सम (जिसका तिसको) लेजाता है एतदर्थ इसको समान नामसे कहते हैं। अरु ऽ । तस्मादेताः सप्तार्च्चिषो भवन्ति । ‹ तातें इतनी सात ज्वालावाला होता है › ऽ तिस कारणसे यह समान नामवाला वायुही इस मुखद्वारसे उदर कुंडबिषे हवन किये अन्नादिकोंके रसादिकों को प्रत्येक नाड़ियोंप्रति सम पहुँचावता है, एतदर्थ भोजनकिये अन्नादिकों के रसरूप समिधावाले जठराग्निरूप हेतुसे हृदयरूप देशसे यह सातसंख्यावाले मस्तकगत दो नेत्रके, दो कर्णके, दो नासिकाके, एकमुखका, इनसातोंद्वार सम्बन्धी ज्ञानरूप ज्वालावाला है ताते इसको । सप्तार्च्चिषः ।‹ सातअर्चीवाला › कहते हैं ॥ अभिप्राय यहहै कि प्राणकरकेहीदर्शनश्रवण अरु रूपादि विषयों का प्रकाश होता है ५ । ३४ ॥

६ ॥ हे सौम्य!पिप्पलाद मुनि कहते भये कि हे कौसल्य ! । हृदिह्येषआत्मा । ‹ हृदय बिषे ही यहआत्मा है › अर्थात् कमलाकार हृदय नाम करके बिख्यात जो मांसपिंड तदन्तर्गत जे हृदयाकाश तिस बिषे, यह आत्मा करके सहित लिंग (जीव) आत्मा बर्तता है । अरुऽ । अत्रैतदेकशतं नाडीनां । ‹ यहां यह

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ६ । ३५ ॥

नाड़ियोंकी (संख्या) एकअधिक एकसौ है (१०१) यहांइसहृदय बिषे मुख्य नाड़ियां संख्या (गिनती) करके एकऊपर एकसौ होती हैं । अरु ८ । तासां शतं शतमेकैकस्यां । ९ तिनके मध्य एक एक बिषे सौ सौ भेदहैं ; ८ तिन प्रत्येक मुख्य नाड़ी बिषे सौ सौ भेदहैं । अरु ८ । द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्ति । ९ प्रतिशाखारूप नाड़ीके (भेद) बहत्तर बहत्तर हजार होते हैं ; ७ पुनः भी पृथक् पृथक् प्रतिशाखारूप नाड़ीके भेदरूप बहत्तर बहत्तरहजार नाड़ियां होती हैं । अर्थात् सुषुम्णा नामवाली एक मुख्य नाड़ीरूप मूल (पीड़) की स्कन्धशाखा (सर्वसे पुष्ट शाखा) रूप सौ १०० संख्यावाली मुख्यनाड़ी हैं तिन प्रत्येककी शाखारूप जो सौ सौ नाड़ियां हैं, तिन एक एक की उपशाखारूप नाड़ियोंकीसंख्या बहत्तर बहत्तरहजार होतीहै। तातेसर्वमिलकेबहत्तर करोड़नाड़ीहैं ॥ [हेसौम्य! अब इनको पुनःश्रवण करो] [उक्त नाड़ियोंकी संख्याका जो वर्णनहै सो वृक्षरूपसे है, तहां हृदयकमलदेशसे जो निकलीहुई नाड़ियां हैं तिन के मध्य जो सुषुम्णा नामवाली मुख्यनाड़ी है सो मूल (पीड़) के स्थानापन्नहै, अरु तिसकी दश नाड़ियां स्कन्ध (पुष्ट शाखा) रूपहैं, अरु उन स्कन्धरूप दश नाड़ियों में से प्रत्येककी नव नव स्थूल शाखाहैं । एतदर्थ इसप्रकार होनेसे एकमूलकी सुषुम्णा नामबाली नाड़ीको छोड़के स्थूलशाखारूप नब्बे ९० नाड़ियां अरु दश स्कन्धरूप शाखा यह सर्व मिलके एकसौ १०० संख्या की होती हैं । तिन सौ नाड़ियोंके मध्य एक एकनाड़ीकी शाखा रूप सौ सौ नाड़ियां और हैं । इसप्रकार होनेसे एक सुषुम्णा मुख्य नाड़ी है अरु सौ स्कन्धरूप नाड़ियांहैं । अरु तिनकी शाखा

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यंलोकं नयति । पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ ७ । ३६ ॥

रूपदशहजारनाड़ियांहैं तिनदशहजारनाड़ियोंमेंसे प्रत्येकनाड़ियों कीउपशाखारूप बहत्तरबहत्तरहजार७२०००नाड़ियांहैं ॥हेसौम्य! इसप्रकारहोनेसे बहत्तरहजार ७२०००संख्याकोदशहजारसंख्या से गुणाकरनेसे एकमूलकी सुषुम्णानाड़ीको छोड़के बहत्तर करोड़ ७२०००००००० नाड़ियां होती हैं इति ॥ । आसुव्यानश्चरति ६ । ; तिसबिषे व्यानवायु विचरताहै ; तिन सर्व नाड़ियों बिषे एक व्याननामवाला वायु विचरताहै । एतदर्थ इस प्राणके भेद वायुको सर्व शरीर बिषे व्याप्तहोनेसे व्याननामकरके कहते हैं ॥ हे सौम्य ! जैसे सूर्य्यबिम्बसे किरण सर्व ओरको निकलती हैं ॥ तैसे शरीरबिषे हृदयकमलसे सर्व ओरको गमनकरनेवाली जो नाड़ियां तिनके सम्बन्धसे सर्वदेहमें व्याप्तहोके व्यानवायु बर्त्तता है । अरु स्कन्ध आदिक जो जो शरीरकी संधिके स्थान अरु मर्म स्थानहैं तिन तिनबिषे विशेषकरके बर्त्तताहै । अरु व्यान जो है सो प्राण अरु अपानरूप वृत्तिके मध्य उनके अभावकालमें उद्भूतवृत्तिरूपहै । अरु यह पराक्रमवाले पुरुषके कर्मोंका कर्त्ता होता है । ६ । ३५ ॥ हे सौम्य ! प्रथम जो कौसल्य मुनिने प्रश्न किया रहा कि । आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते । मुख्यप्राणअपनेआप विभागकरके किसप्रकारसे स्थित होताहै तिसका उत्तर चौथे, पांचवें, छठे, इन तीनवाक्यों से पिप्पलादमुनिने कहा सो तेरे अर्थ कहा ॥

७ ॥ हे सौम्य ! अब उदानवायुके स्थानको कहतेहुये, कौसल्य मुनिके । केनोत्क्रमते । ; किसकरके (शरीर से) निकलता है; इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर कहते हैं ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे कौसल्य ! । अथैकयोर्ध्वउदानः । ; एक ऊंचे उदानहै ; अर्थात् उन एक अधिक सौ १०१ नाड़ियों के मध्य ऊंचे मूर्द्धनी ब्रह्मरं-

भ्रूस्थान बिषे जानेवाली सुषुम्णा नामवाली मुख्यनाड़ी तिस एक नाड़ी से विशेष हुआ ऊपरको ब्रह्मरंध्रपर्यंत जाताहुआ अरु समान हुआ पैरसे लेके माथे पर्यंत वर्त्तमान हुआ उदान वायुविचरता है। अरु ८। पुण्येन पुण्यलोकं नयति पापेनपापं ; पुण्यसे पुण्यलोकको प्राप्तकरता है पापसे पापको ;, सो उदानवायु वेदशास्त्रबिषे विधानकिये जे पुण्यरूपकर्म तिनके करनेसे कर्त्ता पुरुषको देवतादिकों के स्थानरूप पुण्य (स्वर्ग) लोकको प्राप्तकरता है। अरु तिन पुण्यकर्म से विपरीत वेदशास्त्र करके अविहित जे पापकर्म तिनके कर्त्ता पुरुष को पशु, पक्षी, श्वान, शूकरादि योनिरूप पापमय नरकको प्राप्तकरता है। अरु ८। उभाभ्यामेव मनुष्यलोकं। ; दोनों से ही मनुष्यलोकको (प्राप्तकरता है) ; पुण्य अरु पाप दोनों के समुच्चय से मनुष्य लोक (शरीर) को प्राप्तकरता है॥७॥ हेसौम्य! सुषुम्णा नाड़ी विषे अरु सर्वदेहबिषे ब्रह्मरंध्रपर्यंत उदानवायु व्याप्तहोके वर्त्तता है सो स्थूल शरीर से लिंग (सूक्ष्म) शरीर के निकलने में अग्रसरहै, सो उपासना के अनुसार उत्तम मध्यम अधम लोकोंबिषे प्राप्तकरता है, अर्थात् प्रणव देवयान पञ्चाग्नि आदिकों की उपासनावाले उपासकको ब्रह्मरंध्रके द्वारा सर्वोत्तम ब्रह्मलोक को प्राप्तकरता है। अरु सूर्य अग्नि आदिकों के उपासकको चक्षु वागादि द्वारसे सूर्य अग्नि आदिकों के स्वर्गादि मध्यमलोक को प्राप्तकरता है। अरु वेदशास्त्र से विरुद्ध निषिद्ध भूत प्रेतादिकों के उपासकों को गुदा लिंग नख केशादि अपवित्र मार्गों से पशु पक्षी श्वान शूकर चांडालादि पापमय नरकरूप योनियों को प्राप्तकरता है। अरु पाप पुण्य दोनों के सम अरु प्रधानतासे करनेवाले को मनुष्यलोक के ताईं प्राप्तकरता है। अर्थात् पुण्य प्रधान होय अरु पाप सामान्य होय तब सो श्रेष्ठ कुल में धन विद्या संतति आरोग्यता आदिकों करके सम्पन्न होता है अरु जो पाप प्रधान होय अरु पुण्य सामान्यहोय तो सो पुरुष कुल

आदित्योहवैबाह्यःप्राणउदयत्येषह्येनं चाक्षुषंप्राण-
मनुगृह्णानः । पृथिव्यांयादेवतासैषापुरुषस्यापानमवष्ट
भ्यान्तरायदाकाशः ससमानोवायुर्व्यानः८ । ३७ ॥

विद्या धन संतति आरोग्यतादि सुखकरके रहित होता है । अ-र्थात् जिसके पुण्य अधिक अरु पाप थोड़े होतेहैं तिन पुरुषों को इस मनुष्यलोकबिषे ही सुखअधिक अरुदुःख थोड़ाहोताहै । अरु जिनका पाप अधिक अरु पुण्य थोड़ा होताहै तिनको दुःख बहुत अरुसुख थोड़ा होताहै ताते पुरुष को इसलोक परलोक में सुख की प्राप्ति के अर्थ शास्त्रविहित पुण्यकर्महीं करना उचित है, अरु पुण्य पापके समान होने से दुःख सुखों की भी समान प्राप्ति होती है । अभिप्राय यह है कि मनुष्यदेहकी प्राप्ति पाप पुण्य दोनोंसेही होती है । अरु जिन्होंने ज्ञानाग्नि करके पाप पुण्य दोनों को निर्मूल किया है सो मोक्ष होता है ॥ इतिसिद्ध मू ७ । ३६ ॥

८ ॥ हे सौम्य ! उक्त प्रकार कौसल्यमुनि के चतुर्थप्रश्न का उत्तर कहके, अब अधिभूत अरु अधिदैव रूप बाह्य को यह प्राण कैसे धारण करे है, यह पंचम प्रश्न का अरु अध्यात्म को कैसे धारण करे है इस षष्ठ प्रश्नका उत्तर पिप्पलादमुनिने कहा है तिसको श्रवण करो ॥ पिप्पलाउवाच ॥ हे कौसल्य ! अर्थात् हे प्रश्नकर्ताओं में कुशल ! मैं कहौं सो सुन । आदित्यो ह वै बाह्यः प्राणउदयत्येषह्येनं चाक्षुषंप्राणमनुगृह्णानः । १ आदित्य-ही प्रसिद्धबाह्यका प्राण है यह ऊर्ध्व को जाता है यह इस चक्षु बिषे स्थित प्राणको अनुग्रह करताहुआ वर्त्तता है अर्थात् यह जो प्रकट सूर्य है सोई बाहर समष्टिका प्राणहै अरु यह सूर्यरूप प्राण उदयहुआ ऊंचे को जाता है १ जैसे नाभिसे उदय हुआ प्राण ऊंचे को जाता है तैसे २ अरु यह सूर्यरूप प्राण इस चक्षु इन्द्रिय बिषे स्थित व्यष्टि प्राणको अपने प्रकाश से अनुग्रह कर

ता हुआ अर्थात् रूपविषयके ज्ञान विषे चक्षुके प्रकाश को करता हुआ वर्त्तता है। अरु । पृथिव्यांया देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्य । (पृथिवी विषे जो देवताहै सोइसपुरुषकी अपानवृत्ति को आकर्षण करके वर्त्तता है ; तैसेही पृथिवी विषे अभिमानी जो प्रसिद्ध [अग्नि] देवता है सो यह पुरुष की अपाननाम वाली प्राणवृत्ति को आकर्षण द्वारा स्ववशकरके नीचेहीको खींचने रूप अनुग्रह को कर्त्ताहुआ वर्त्तता है। यदि ऐसा न होय तो शरीर भारी होने से गिरपड़ेगा। अथवा अवकाश सहित (थल) मैदानमें ऊपरको जायगा। सोतो होता नहीं,यह अग्नि रूप पृथिवी काही अनुग्रह है। अर्थात् बाह्यका जो समष्टि अपानवायु अग्नि देवतारूप पृथिवी सो पुरुषकी जो अधोगामी प्राणकी अपाननाम्नी वृत्ति है तिसको आकर्षण करतीहुई शरीर को अपने आकर्षणमें रक्खे है इसही हेतुसे यहशरीर भारीहुआ भी गिरता नहीं अरु ऊपरको भी जाता नहीं यहही बाह्य अपान का अनुग्रहहै। अरु । अन्तरा यदाकाशः समानो वायुर्व्यानः । (जो मध्यमें आकाशहै सो वायु समान रूपहै व्यानके अर्थ अनुग्रहकरता है ; यह जो स्वर्ग (सूर्य्य) अरु पृथिवीके मध्यमें आकाश है तिसविषे स्थित जो वायु है तिसको। मञ्चस्थपुरुषवत्, आकाशनामसे कहते हैं। [। मञ्चाःक्रोशन्तीति । (मञ्च पुकारते हैं ; इस वाक्य बिषे जैसे मञ्चशब्द करके मंचकोही ग्रहण न करके मञ्चस्थ पुरुषपुकारते हैं, ऐसा लक्षणसे ग्रहण होता है। तैसेहीयहां आकाश शब्दसे केवल आकाशहीका ग्रहण न करके तिस आकाशविषे स्थित वायुको लक्षणा से ग्रहण करते हैं] अरु सो वायु समानरूपहै, सो अन्तर समान वायुके अर्थ अनुग्रहकरताहुआ वर्त्तता है सो काहेसे कि अन्तर समान वायुप्राण अरु अपानके मध्यमें स्थित है, अरु बाह्य समानवायु सूर्य्यरूप प्राण अरु पृथिवीरूप अपान इनके मध्य में स्थित है, ताते अन्तर समानवायु अरु बाह्य समानवायु इन दोनोंको अ-

तेजो हवैउदानस्तस्मादुपशान्ततेजः । पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसिसम्पद्यमानैः ९ । ३८ ॥

न्तर बाह्य प्राण अपानके मध्य स्थितहोनेसे समताहै, तातेसमष्टि समान वायु व्यष्टि समानवायुपर अनुग्रह करता है। अरु सामान्यरूप से जो बाह्य का वायु है सो बाह्य का व्यान वायु है सो अन्तरके व्यानवायुके अर्थ अनुग्रह करता है क्योंकि व्याप्तिकी समताहै अर्थात् अन्तरका व्यानवायु शरीर के अन्तर नखशिख पर्य्यन्त व्याप्त है अरु बाह्यका व्यानवायु विण्डात्माके अन्तर द्यौ (ब्रह्म लोक) से पाताल पर्यन्त व्याप्त है ! ताते व्याप्तिकी समतासे बाह्यका समष्टि व्यानवायु अन्तर के व्यष्टि व्यानवायुपर अनुग्रह करताहुआ वर्त्तता है ८ । ३७ ॥

९ ॥ हे सौम्य! पुनः पिप्पलादमुनि कहतेभये कि हे कौसल्य! [तेजो हवै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजः] (प्रसिद्ध तेजही उदान रूप है ताते तेजसे रहित होता है ; अर्थात् जो बाह्यका स्पष्ट सामान्य तेजहै सो बाह्यका समष्टि उदानरूप है । अभिप्राय यह है कि बाह्यका सामान्य तेज है सो अपने प्रकाशकरके शरीरस्थ उदानवायुके अर्थ अनुग्रह करताहै । हे सौम्य ! [इसप्रकार सूर्यादिरूपसे मुख्य प्राणको प्राण अपान समान उदान व्यान इनके अर्थ अनुग्रह करने के कथनसे अध्यात्मरूप प्राणादि वृत्तियोंके अनुग्रह का कर्त्तापना कहा । अरु सूर्य अग्नि आकाश सामान्य वायु अरु सामान्य तेज यह क्रमसे बाह्य के प्राणादि रूपहुआ मुख्य प्राण सूर्यादि अधिदैवरूप बाह्य को धारता है इसप्रकार कहा । अरु तिस सूर्यादिरूपसे जो स्थिति सोई तिस का धारण है । अरु प्राण अपानादिकोंके अनुग्रहसे चक्षुरादिकों के अनुग्रह से तिसद्वारा 'मुख्य प्राणको' उन चक्षुरादि अधिभूत स्वरूप बाह्यरूपका धारण कर्त्तापनाकहा । अरु [सप्राण स्तच्चक्षुः सोऽपानः सा वाक् स व्यानस्तच्छ्रोत्रंससमानस्तन्म-

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसायुक्तः।
सहात्मनायथा संकल्पितंलोकंनयति १० । ३९॥

नः स उदानः स वायुरिति श्रुत्यन्तरे ।–ं सो प्राण सो चक्षु सो अपान सो वाणी सो व्यान सो श्रोत्र सो समान सो मन सो उदान सो वायु ः। इसश्रुति करके चक्षुरादिकों को प्राणादि स्वरूपता के कथनसे अरु चक्षुरादि कों के अनुग्रह कर्त्तापने के कहने से चक्षुरादि रूप अध्यात्मका धारण कर्त्तापना मुख्य प्राण को कहा॥ इसरीति से यहां पर्यन्त बाह्यको कैसे धारण करता है अरु अध्यात्म को किस रीतिसे धारण करता है, इन पंचम अरु षष्ठ दोनों प्रश्नोंका उत्तर कहा, यह जानना] जिस करके तेज स्वभाववाला अरु शरीर से, लिंगको, बाहर निकलनेरूप क्रियाका करनेवाला उदानवायु भी बाह्य के तेज के अनुग्रह को पायाहुआ ही शरीर बिषे वर्त्तता है तिसहीकारणें से जब जीवके जीवने के हेतु कर्म (प्रारब्ध) के उपराम भये बाह्यके तेजरूप उदानके, अन्तर उदानवायु के निमित्तके, अनुग्रहके अभावसे लौकिक पुरुष स्वाभाविक तेजसे रहित होता है, तब उस समय उस पुरुषको क्षीणआयुवाला मरने के योग्य जानना। अरु ं। पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ६। ंमनबिषे प्रवेश को प्राप्तभई इन्द्रियों के साथ अन्य शरीर को पावता है ः सो 'मरनेवाला' तेजादिकों के शान्तभये पीछे मनबिषे प्राप्तभई जे वागादि इन्द्रियां। वाङ्मनसिसम्पद्यते। तिनके साथ, अध्यास के वशभया, अन्यशरीरको पावताहै९।३८॥

१०॥ हे सौम्य! हे कौसल्य!। यच्चित्तस्तेनैषप्राणमायाति। ं यह जिसमें चित्तवाला होता है तिस करके प्राणको पावता है अर्थात्, यहजीव जिस पशुपक्षि आदिक शरीरमें चित्तकरके युक्त होताहै, अर्थात् जिन शरीरों में चित्त संकल्पादि चेतना धर्मवाला होताहै, तिन शरीरों में मरणकाल बिषे उस चित्तके संकल्पसे

यएवंविद्वान् प्राणंवेद । नहास्यप्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ११ । ४० ॥

इन्द्रियोंकेसाथमिलकेमुख्यप्राणवृत्तिकोपावताहै, अर्थात् मरण कालविषे इन्द्रियोंकी वृत्तिकेक्षीणभये यहजीव मुख्यप्राणवृत्तिरूप सेही स्थितहोताहै । तब इसके ज्ञातिसम्बन्धि के लोग परस्परमें कहते हैं कि अभी तो यह जीवताहै । अरु [प्राणस्तेजसायुक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति] (प्राणतेजकरके युक्त हुआ सहित आत्माके जैसा निश्चय कियाहै तैसे लोकको पाव-ताहै) सो प्राण जब बाह्यके तेजरूप उदानवायु के अनुग्रह को प्राप्तभई जे 'अन्तर' उदानवृत्ति , जो उत्क्रमण में प्रधान है, तिसकरके युक्तहुआ शरीरके अधिपति जीवात्मा (साभासलिंग) के साथ तादात्म्यभावको पावता है, तब तिस तादात्म्यताकरके भोक्तारूपभया प्राण उक्तप्रकार उदानवृत्ति सेही युक्तहुआ तिस ही भोक्ताको , कि जिसकेतादात्म्यसे आप भोक्ताभयाहै, पुण्यपाप रूप स्वकर्मके वशसे जैसा इसजीवात्माका अभिप्राय है तैसेही लोकको प्राप्तकरता है १० । ३९ ॥

११ ॥ हे सौम्य ! [उक्तप्रकार करके व्यष्टि समष्टि प्राण के स्वरूप स्थानादिकों का निर्णय करके अब तिसकी उपासनाका विधान करते हैं । यहां यह अर्थ है कि-आत्मासे प्राण उपजता है सो मनके किये धर्म अधर्म से शरीरके अर्थ अनुग्रहकरताहै। अरु आपके पांचप्रकार विभागकरके वायु (गुदा) अरु उपस्थ (लिंग) इन स्थानों विषे अपनेही भेद अपान वायु को स्थापन करे है । अरु चक्षु श्रोत्र मुख नासिकारूप स्थान विषे स्वस्वरूप प्राणकोही स्थापित करे है। अरु नाभिरूप स्थान विषे अपने स-मान रूप भेद को स्थापन करे है अरु नाड़ियों के समूहरूप स्थानविषे अपने भेद व्यान रूपको स्थापितकरे है । अरु सुषु-म्नानाड़ीरूप स्थानविषे अपने भेद उदानवायु को स्थापित

करे है। अरु प्राण अपान समान व्यान अरु उदान, इनके अनुग्रह कर्त्ता बाह्यरूप सूर्य पृथिवी देवता आकाश वायु अरु तेजरूप से अधिदैवको धारणकरे है। अरु सूर्यादिकों के अनुग्रहसे प्राणादि वृत्तिरूप अध्यात्मको अरु चक्षु वाक् श्रोत्र मन अरु त्वचारूप अरु चक्षुरादि इन्द्रियोंकरके ग्रहणकरनेयोग्य रूपादि विषयरूप अधिभूतको धारणकरेहै। अरु सोई प्राण उदानवृत्तिसे भोक्ताकरकेयुक्त हुआ भोक्ता (जीवात्मा) को देहत्यागान्तर लोकान्तर किंवा देहान्तर प्रति लेजाताहै॥ हे सौम्य! सोई प्राण सर्वमें ज्येष्ठश्रेष्ठहै, सोई प्रजापति है, सोई अन्नका भोक्ताहै। इसप्रकार उत्पत्त्यादि उक्त विशेषणोंकरके युक्त प्राणको जानता है सो अग्रिम कहे फलको पावताहै]॥ हे सौम्य! हे कौसल्य! (य एवं विद्वान् प्राणं वेद। <जो विद्वान् ऐसे प्राणको जानताहै> अर्थात् जोकोई ब्राह्मणादि विद्वान् कहे प्रकार उत्पत्त्यादि विशेषणोंकरकेयुक्त मुख्यप्राणको जानताहै अर्थात् उपासता है। तिसको इसलोक परलोक सम्बन्धि जो फल प्राप्तहोताहै सो वेद भगवान् कहतेहैं ऽ। न हास्यप्रजाहीयतेऽमृतो भवति तदेषश्लोको (भवति)। <इसकी प्रजा उच्छेदको पावती नहीं > अरु <मरण धर्मसे रहित होता है तिस बिषे यह श्लोक (मंत्र) है > ? इस विद्वान् की 'कि जो प्राणका सम्यक् उपासक है, पुत्र पौत्रादिरूप प्रजा ,उसकी विद्यमानता में, विनाश को पावती नहीं। अरु शरीर के पतन भये यह प्राणोपासक पुरुष मुख्य प्राण (सूत्रात्मा) के साथ सायुज्यता (अभेदता) को पाय मरण धर्मरहित अमर होताहै ऽ [यह जो प्राणके साथ एकतारूप अमृतभाव है सो प्राणके सकाम उपासकको अन्तमें होताहै। अरु निष्काम उपासक को चित्त की एकाग्रता अरु शुद्धि द्वारा आत्मज्ञान होय मुख्य अमृतत्वकी प्राप्तिहोतीहै] ऽ अरु इसही अर्थविषे यह अग्रिमवाक्यरूपमंत्र प्रमाणहै॥इतिसिद्धम्११।४०॥

१२॥ हे सौम्य! हेकौसल्य! (उत्पत्तिमायतिंस्थानं विभुत्वञ्चैव पञ्चधाअध्यात्मंचैवप्राणस्य। < प्राणकी उत्पत्ति को आगमन को

उत्पत्तिमायतिंस्थानंविभुत्वञ्चैवपञ्चधा अध्यात्मञ्चैवप्रा
णस्य विज्ञायामृतमश्नुतेविज्ञायामृतमश्नुते १२ ॥ ४१
इतिप्रश्नोपनिषद्गततृतीयप्रश्नः ३ ॥

स्थानको अरु पांच प्रकार से स्वामित्वभावको ,अरु, अध्यात्मको अर्थात् प्राण की परमात्मासे उत्पत्तिको अरु मनके किये कर्मों से इस शरीर बिषे आगमन को अरु गुदा उपस्थादि स्थानों बिषे स्थितिको अरु चक्रवर्त्ति राजावत् प्राण वृत्ति के पांचभेद के पांच प्रकार से स्थापन रूप स्वामित्वको । अरु सूर्य्यादिरूप से स्थिति रूप बाह्यको । अरु प्राणादिवृत्ति रूपकी चक्षुरादिकों के आकारसे स्थितिरूप अन्तर अध्यात्माको ।विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुते । <जानके अमरणभाव को पावताहै> हे सौम्य! इसप्रकार प्राणको सम्यक्प्रकार जानके उपासना करनेवाला विद्वान् प्राणके साथ अभेदता से ऐक्यभावरूप अमृतको पावता है । जानके अमृत को पावता है । यहां जो द्विबारकथन है सो तृतीयप्रश्न की समाप्त्यर्थ अथवा अपरविद्या सम्बन्धि प्रश्नों की समाप्त्यर्थ किंवा अपरब्रह्मकी उपासना विद्या की समाप्ति के अर्थ है ॥ इति सिद्धम् १२ । ४१ ॐ ॥

इति प्रश्नोपनिषद्गततृतीयप्रश्नःभाषाटीका
पूर्वार्द्धकी समाप्ता ३ ॥

अथ चतुर्थप्रश्नःप्रारभ्यते ॥

अथ हैनं सौर्य्यायणो गार्ग्यः पप्रच्छ । भगवन्नेत स्मिन् पुरुषे कानिस्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति कस्यैतत् सुखं भवति कस्मि-न्नु सर्व्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति १ । ४२ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत चतुर्थप्रश्न भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य ! प्रथम प्रश्न करके कहे प्रकार कर्म्म उपासनाकी 'परिणाम, गतिको श्रवणकरके तिनसे वैराग्यवान्हुआ । अरु द्वितीय तृतीय प्रश्नकरके कहीगई जे प्राणकी उपासना तिसक-रके चित्तकी एकाग्रता अरु शुद्धिवालाहुआ अरु इसहीं करके विवेकादि साधन चतुष्टय करके सम्पन्न जो उत्तमाधिकारी को पराविद्या (ब्रह्मविद्या) कि जिसकरके अक्षरब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै तिसके श्रवणार्थ चतुर्थ पंचम अरु षष्ठ इन तीनों प्रश्नोंका प्रार-म्भ करते हैं ॥

१ ॥ हे सौम्य! । अथ हैनं सौर्य्यायणोगार्ग्यःपप्रच्छ । (तिसके पश्चात् इसको सौर्य्यमुनिकापुत्र गार्ग्यनामामुनि प्रश्नकरताभ-या ; अर्थात् कौसल्यनाममुनिके समाधान होनेके पश्चात् सौ-र्य्यमुनिका पुत्र गार्ग्यनामवाला मुनि इस उत्तरदाता सर्वज्ञ अ-पने आचार्य्य पिप्पलादमुनिको पूंछताभया ॥ यहां अभिप्राय यह है कि पूर्वके प्रथम, द्वितीय, अरु तृतीय इन तीनों प्रश्नों से सं-सार रूप व्याकृत 'अर्थात् कार्यमय जगत् के अन्तर्गत साध्य साधनमय, अर्थात् कर्म उपासना अरु तिनके फलमय, अनित्य सर्व प्राणरूप अपरब्रह्मकी विद्याके विषयको समाप्तकरके अब असाधनरूप प्रमाणोंकी प्रवृत्तिसे रहित अर्थात् अप्रमेय मनका

अगोचर इन्द्रियोंका अविषय अर्थात् कार्यभाव रहित शिव शान्त अविकारी अक्षर सत्य पर विद्याकरके गम्य बाहरभीतर अजन्मा पुरुषनामवाला परब्रह्मकी विद्याका विषयरूप जो बस्तु सो कहनेके योग्यहै। एतदर्थ अग्रिम ४-५-६-इन तीन प्रश्नोंका प्रारम्भ करते हैं। हेसौम्य! [इसप्रकार सामान्यरीत्या आगेकहने के तीनों प्रश्नोंका सम्बन्ध कहके अब केवल चतुर्थप्रश्नकेही सम्बन्ध को कहतेहैं] तहां ऽ। यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः। तथाऽक्षराद्विविधा सौम्यभावाःप्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति। ⸗ जैसे प्रज्वलित अग्निसे अग्निके अवयव चिनगारी अनेक प्रकारकी सहस्रावधि निकलती हैं। हे सौम्य! तैसे ही अक्षर (परब्रह्म) से अनेक प्रकार के पदार्थ, उपजते हैं अरु तहांही लीन होते हैं; इसप्रकार मुण्डक उपनिषद्के द्वितीयमुंडककी प्रथम श्रुतिमें कहाहै। ऽ कौनसे वो सर्वभाव हैं जो अक्षरब्रह्मसे उपजते हैं। वा किसप्रकार वेभाव विभागको पायके तहां ही लीनहोते हैं। अरु किस लक्षणवाला वो अक्षरब्रह्म है। इस अर्थके श्रवणकरनेकी इच्छासे अब गार्ग्यनामामुनि प्रश्नोंको प्रकट करता भया ॥ गार्ग्यउवाच। भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति। ⸗ हे भगवन्! पुरुषबिषे कौन सोवताहै (अरु) कौन इस बिषे जागताहै (अरु) जो यह देव स्वप्नोंको देखता है सो कौनहै? ऽ हे भगवन् इस मस्तक हाथ पांव आदि अंगोंवाले शरीररूप पुरुष बिषे कौनसे करण अर्थात् मनआदि अन्तःकरण अरु चक्षुरादि बाह्यकरण इनमेंसे कौनसे करण अपने व्यापार से उपरामरूप निद्राको करते हैं। अरु कौनसे करण इस पुरुष बिषे अपने व्यापारके करने रूप जागरण को करते हैं। अरु कार्य अरु करणरूप देवताओं के मध्य जो यह देव स्वप्नों को देखता है सो कौन है। अभिप्राय यहहै कि जाग्रत् के देखने से निवृत्तभये पुरुषको स्वशरीर के भीतर जो जाग्रत्वत् ही दर्शनादि हैं तिस

को स्वप्न कहते हैं, सो तिसका क्या कार्य्य देह अरु प्राण) रूप देवसे निर्वाह करते हैं, अथवा करण (मनआदि) रूप किसी भी देवसे निर्वाह करते हैं। अरु (। कस्यैतत् सुखंभवति । ; यह सुख किसकोहोताहै) ; जाग्रत् अरु स्वप्नके व्यापारके निवृत्तहुये प्रसन्न अरु विषयके अभावमात्र से ही देखनेयोग्य अरु विनाश रहित आत्माका स्वरूप भूत जो यह सुख है सो किसकोहोताहै। अरु (। कस्मिन्नुसर्वे सम्प्रतिष्ठिताभवन्ति । ; किसविषे वहसर्व लीनहोते हैं ;) जिसकालबिषे जाग्रत् स्वप्नके व्यापार से निवृत्त भये सर्व जीव , जैसे मधु बिषे रस, अर्थात् जैसे मधुकर मक्षिका के उदर बिषे सर्व रस तद्वत्, अरु समुद्र में प्रवेश को प्राप्त भई नदियोंवत्, किस बिषे एकताको प्राप्तहो के विवेचन के अयोग्यहुये लीन होतेहैं। अर्थात् [इस चतुर्थ प्रश्न बिषे अक्षर (परमात्मा) के स्वरूपको ही श्रवण करने की इच्छा होने से तिसके निर्णयहोने के अर्थ । कानि स्वपन्ति । ; कौन सोवताहै ; (इत्यादि पांचप्रकारके आवान्तर प्रश्नवाला जो प्रश्नहै सो जाग्रदादि अवस्थाके मिस अवस्थाओं के धर्मीविशेषके निर्णयार्थ है। (अन्यथा विचारने से उन जाग्रदादि अवस्थाओं को आत्मा के धर्म होनेको शंकाके होनेसे तिस आत्माके निर्विशेष भावके निर्णयकी असिद्धिहैं।) तहां प्रथम प्रश्नकरकेजाग्रत्का धर्मीपूंछा (क्योंकि स्वप्नअवस्थामेंजिसकेव्यापारकी निवृत्तिकेहोनेसेजाग्रत् नहींहै सो तिसजाग्रत्का धर्मी है इसप्रकार निश्चयकरनेको शक्य है ताते ॥ अरु द्वितीय प्रश्नकरके तीनोंही अवस्था बिषे शरीरका रक्षण) होना किसके धर्म से है, यह प्रश्न किया (क्योंकि जागते हुये अरु व्यापारों से निवृत्त भये प्राणकोही शरीरका रक्षक होने का संभव है ताते ॥) अरु तृतीय प्रश्न करके स्वप्नके धर्मीके अर्थ प्रश्न किया ॥ अरुचतुर्थ प्रश्नकरके सुषुप्तिका धर्मी पूंछा। क्योंकि । सुखमहमस्वाप्समिति । ; मैं सुख जैसे होय , तैसे, सोयाथा) इसप्रकार के सुषुप्तिसे जाग्रत्भये पुरुषको स्मरणके

होने से सुखके सुषुप्तके साथ सम्बन्ध है ऐसा जानाजाता है ताते। अरु सुषुप्ति अवस्था बिषे प्रकाशमान जो यह ऽ ☞ अंगुली निर्देशवत् प्रकट सुख है सो ,मैं सुख से सोयाथा, इस स्मरण का मूलभूत है। अर्थात् जाग्रत्भये जोसुषुप्ति के सुखका स्मरण है सो सुषुप्ति के आनन्द के आश्रय है ताते सुषुप्ति का सुख जाग्रत् भये सुखकी स्मृतिका मूलभूतहै। एतदर्थ चतुर्थप्रश्न से सुषुप्तिका धर्मी पूंछा ॥ अरु पंचम प्रश्नकरके तीनों अवस्था करके रहित अरु तीनोंही अवस्थाके स्थितिकी " भूमा " भूमीरूप तुरीय नामवाला अथवा तुरीयरूप अक्षर पूंछा ॥ यहां । तस्मिन् काले । (तिस कालबिषे ; इसप्रकार आरंभ कियेहुये पंचम प्रश्नकरके यद्यपि तुरीय पदके अर्थही प्रश्नहै सुषुप्तिके अर्थ नहीं तथापिसंसार दशाबिषेसर्व उपाधिसे रहित जोतुरीयअवस्था है तिसके अभावभये से किसी न किसी उपायसेही उस तुरीय पदका देखावना होताहै ताते, उस सुषुप्तिवाले पुरुषवत् ज्ञानके हुये भी, अर्त्थात् जैसे सुषुप्तिअवस्थावाले को सुखरूपका प्रकट ज्ञानहोताहै, तिसकेहोतेहुये भी तहां (सुषुप्तिमें) अन्य उपाधियों से रहित होनेकरके तहांही सर्व उपाधियोंके विवेकके करने से तुरीयपदका देखना सुगमहोताहै ताते तिस सुषुप्तिकालबिषे तुरीय पदके अर्त्थ सर्व्वके लयका कथन है। अरु यहां सुषुप्ति अवस्थां बिषे सर्वप्रकारके लयके देखावनेका अभावहै, ताते भेदज्ञानरूप विवेकके अभावमात्रसे ' मधुबिषे रस अरु समुद्रबिषे नदियांवत् यह दोनों दृष्टान्तहैं अर्थात् मधुबिषे रसको अरु समुद्रबिषे नदियोंको यह विवेक नहीं रहता जो हम अमुक वृक्षके रस अरु अमुक नदीकाजल है। इस अभिप्रायसे (विवेचनके अयोग्य ऐसा भाष्यमें कहाहै , । एतदर्थ पूर्व विवेकके अयोग्यहुये पीछे लीन होते हैं। जैसे जलमें डूबता प्रथम दर्शनके अयोग्यहुये पीछे डूबताहै तैसे॥ इत्यर्थः ॥ शंका ॥ इस पंचमप्रश्नकरके भी अविद्याकी वासनासे विवेचनकरनेको अयोग्यहुआ सुषुप्तिके धर्मी के

अर्थही प्रश्न कियाहोगा॥ समाधान॥ यह शंका करने योग्य नहीं, क्योंकि । सपरेऽक्षरे आत्मानिसम्प्रतिष्ठते । (सो परमात्मारूप अक्षरबिषे लयको पावते हैं इसप्रकार आगे इसही प्रश्नके नवम वाक्यके अन्तबिषे कहेंगे ताते। अरु सुषुप्ति में अज्ञानबिषेही लय होता है ताते। अरु । एषहिद्रष्टा । (यहही द्रष्टा है; इत्यादि इसप्रश्नके नवम वाक्यकी आदि में कहे अज्ञानबिषे प्रतिबिम्बित भोक्ता जीवके भी अक्षरबिषे लयकाकथनहै ताते। अरु । अच्छाय । (छाया रहित; अर्थात् अज्ञान रहित, यह इसहीप्रश्न के दशम वाक्यबिषे अज्ञानके अभावका कथनहै ताते। एतदर्थइस ([कस्मिन्नु सर्व्वे प्रतिष्ठिताभवन्ति । (किसबिषे सर्व लयहोते हैं;) पंचम प्रश्नकरके तुरीयरूप अक्षरही पूंछाहै। इतिभावः] शंका॥ कार्यकारणसे व्यतिरिक्त (जुदा) किसीएक लयके आधार से सामान्यरीतिकरके जानेहुये (किसबिषे लय होता है, ऐसा विशेषार्थ प्रश्न उक्तहै। अरु यहां जिसकरके उसलयके आधारका सामान्यपनेकरके ज्ञान नहीं भया है तब तिसके बिशेष स्वरूपके अर्थ प्रश्न कैसे घटेगा किन्तु न घटेगा। अरु जो ऐसा कहो कि लयको आधारसहित होनेकरके सामान्यपने से तिस लयके आधारका ज्ञान भया है। सो कहना बने नहीं, क्योंकि तिस तिस कार्य घटादिकोंका उपादान मृत्तिकादि अचेतनों कोही तिन घटादिकों के आधार होने करके तिन मृत्तिकादिकों से पृथक् चेतनरूप आधारकी असिद्धि है। ' एतदर्थ यहां वादी शंका करता है] कि (जैसे त्याग किये दात्रि (दरांति धान्य आदिक काटनेका शस्त्र) आदि करणोंवत्, अपने २ व्यापार से निवृत्तभये इन्द्रियादि करण पृथक् २ ही अपने २ आत्म (कारण) स्वरूपबिषे स्थित होते हैं, ऐसा मानना युक्त है, एतदर्थ यहां सुषुप्ति को प्राप्त होके पुरुषों के करणों (इन्द्रियों) का किसीभी बिषेएकताभावके प्राप्तिकी आशंकाकी प्राप्ति कहांसेहोगी किन्तु न होगी॥ समाधान॥ हे वादी! प्रश्न करनेवाले की यह

तस्मैसहोवाच । यथागार्ग्यमरीचयोऽर्कस्यास्तंगच्छ न्तःसर्व्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डलएकीभवन्ति । ताःपुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवंहवैतत्सर्वंपरे देवेमनस्येकीभवति । तेनतर्ह्येषपुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजतेनेयायते स्वपितीत्याचक्षते २ । ४३ ॥

शंका ‹ कि किस बिषे सब लयहोतेहैं, › युक्तही है, क्योंकि जिस करके जाग्रत्बिषे संघात रूपभये करण (इन्द्रियादि) सो अपने स्वामी (संघाताभिमानी) के अर्थ होतेहैं ताते परतन्त्रहैं । अरु एतदर्थही सुषुप्तिबिषे भी एकत्रहुये करणों (इन्द्रियों) का परतन्त्र भावसेही किसी न किसी वस्तुबिषे मिलना युक्तहै एतदर्थ आशंकाके अनुसारही यह प्रश्नहै । अर्थात् अन्तःकरण बिषे विद्यमान जे शंका तिसके अनुसार वाणीकरके कहा यह प्रश्नहै अरु ‹ यहां लयरूप विशेषण करके युक्त जो सोपाधि आत्मातद्विषयक प्रश्नहीं , किन्तु, जैसे काक (कौआ) करके उपलक्षित देवदत्तका गृह, तैसे सर्व के लयरूप उपलक्षण करके लक्षितजे शुद्धआत्मा तद्विषयक प्रश्न है । इस तात्पर्य से कहतेहैं] › यहां तो कार्य अरु कारणका संघात है सो सुषुप्ति अरु प्रलयकालमें जिसबिषे लीनहोता है । स कोनुस्यादिति । ‹ सो कौन है › इस प्रकार जाननेकी इच्छा वालेका ‹ । कस्मिन्नु सर्व्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति । ‹ किसबिषे सर्व भलीप्रकार लीनहोता है › ‹ जो यह प्रश्नहै सो शंकानुसार युक्तही है १ । ४२ ॥

२ ॥ हे सौम्य! उक्तप्रकार जब प्रश्न कियातब । तस्मैसहोवाच । ‹ तिसके अर्थ सो स्पष्ट कहताभया › अर्थात् तिस गार्ग्यमुनि नामवाले अपने शिष्यके अर्थ सो पिप्पलादमुनिनामवाले सर्वज्ञ आचार्य कहतेभये कि । यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छन्तः

सर्व्वाएतस्मिंस्तेजोमण्डलएकी भवन्ति। < हे गार्ग्य! जैसे सूर्य्य के सर्व किरण अस्तहुये इस तेजोमण्डल बिषे एकत्र होते हैं > <हे गार्ग्य! जो तैंने प्रश्न किया है तिसका उत्तर सावधानतासे श्रवणकर। जैसे सूर्यके सर्वकिरण अस्तताको प्राप्तहुये इस तेजो मंडल बिषे एकताकोपावते हैं। अरु <। ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्ति। < सो पुनः पुनः उदयको पाये हुये फैलते हैं > सो तिसही सूर्य्यके किरण बारंबार उदयताको पायेहुये सर्वओरको फैलतेहैं <। एवं ह वै तत् सर्व्वं परे देवे मनस्येकी भवन्ति। < ऐसे प्रसिद्ध यह सर्व परम देव मन बिषे एकत्रहोते हैं > जिस प्रकार यह दृष्टांतहै, इसप्रकार यह प्रसिद्ध जो विषय अरु इन्द्रियादिकों का समूह अरु चक्षुरादि देवताओंको, मनके आधीनहोनेसे परमोत्कृष्ट देव (प्रकाशवान्) जो मनहै तिसबिषे, <'जैसे तेजोमय मंडल (सूर्य्य) बिषे किरणोंकी एकताहोतीहै तैसे, > स्वप्नकालमें एकताको प्राप्तहोते हैं। अरु जाग्रत्‌की इच्छावाले पुरुषके विषय अरु इन्द्रियादि, <'जैसे सूर्य्यमण्डलसे निकले हुये किरण अपने प्रकाश कर्त्तव्यरूप व्यापारको करतेहैं तैसे, > मनसे निकसेहुये अपने २ व्यापारको करते हैं। अरु जिसकरके स्वप्नकालमें शब्दादि विषयों के ज्ञानके साधक जे श्रोत्रादि इन्द्रियां सो मनबिषे एकताको प्राप्तहुयेवत् अपने करणत्वरूप व्यापारसे निवृत्तहोतेहैं <। तेन तर्ह्येष पुरुषो, न शृणोति, न पश्यति, न जिघ्रति, न रसयते, न स्पृशते, नाभिवदते, नादत्ते, नानन्दयते, न विसृजते, नेयायते, स्वपितीत्याचक्षते २। < तिससे स्वप्नकाल बिषे यह पुरुष, श्रवण करतानहीं, देखतानहीं, गंधलेतानहीं, रसकास्वाद लेतानहीं, स्पर्शकरता नहीं, बोलतानहीं, ग्रहणकरता नहीं, आनन्दको पावतानहीं, मलमूत्रको त्यागतानहीं, चलता नहीं, (किन्तु) सोवताहै ऐसा कहते हैं, > तिसकरके तिसस्वप्नकालबिषे यह ब्रह्मदत्तादि नामवाला शरीररूप पुरुष, सुनता नहीं, देखतानहीं, गंधलेता नहीं, रसादिकोंका स्वाद लेता नहीं, स्पर्श

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरेजाग्रति । गार्हपत्योह वाएषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयःप्राणः ३।४४॥

करता नहीं, कुछ भी बोलतानहीं, कुछभी लेतानहीं, विषयजन्य आनन्दको प्राप्तहोता नहीं, मलमूत्रादिकों को त्यागतानहीं, कहींकोभी चलतानहीं,किंतु उसको सोवताहै ऐसाकहते हैं २।४३॥ हे सौम्य ! यहां पर्यन्त । एतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति । ८ इस शरीर बिषे कौन सोवताहै इस प्रथम प्रश्नका उत्तर कहा ॥ ३ ॥ हे सौम्य ! अब । कान्यस्मिन् जाग्रति । ८ इस शरीर नामक पुरबिषे कौन जागताहै ८ यह जो गार्ग्यमुनिका द्वितीय प्रश्नहै तिसका उत्तर जो पिप्पलादाचार्यने कहा है तिसको भी श्रवणकरो ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे गार्ग्य! । प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति । ८ इस पुरबिषे प्राणरूप अग्निही जागते हैं ; अर्थात् चक्षुरादि सर्व करणों को सो ये (मनबिषे एकत्र) हुये इस नव किंवा दश किंवा एकादश द्वारवाले देहरूप पुरबिषे प्राणादि नामवाले पांच वायुही, अग्निवत्, अग्निहै सोई जागते हैं ॥ हे सौम्य! अब प्राणों को अग्निकी समता कहते हैं तिसको श्रवणकरो ॥ । गार्हपत्यो हवाएषोऽपानो ८ यह प्रसिद्ध अपानहै सो गार्हपत्याग्नि है ८ अर्थात् यह जो प्रसिद्ध अपान वायुहै सोई गार्हपत्य नामवाला अग्निहै ॥ प्र० ॥ किस प्रकारहै ॥ उ०॥ । गार्हपत्यात्प्रणीयते । ८ गार्हपत्य ,नामवाले अग्नि, से निकलते हैं ८। हे सौम्य!जैसे अन्य अग्निके रचनेवाले गार्हपत्य नाम वाले अग्निसे, नित्यके अग्निहोत्रके कालसे अन्य अग्निहोत्र के कालबिषे तिस गार्हपत्य अग्निसे अन्य आहवनीय नामवाला अग्नि निकालते हैं तैसे जिसकरके सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त भये पुरुषके, गार्हपत्याग्नि भावसे कहा जो अपान नामवायु तिसके भीतरजानेसे प्राणवायु निराबरणहोता है तिसकारण से ,मेघोंमें

यदुच्छ्वास निःश्वासावेतावाहुती समंनयतीति सस मानः। मनोहवाव यजमान इष्टफलमेवोदानः सएनं य जमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ४। ४५ ॥

से निकसे चन्द्रमावत्, अपानवायु से निकसे हुयेघत् मुख अरु नासिकारूप द्वारसे बाहर (ऊपर) को चलताहै एतदर्थ अपान वायु गार्हपत्य अग्नि के स्थानापन्नहै। अरु "आहवनीयः प्राणः" "प्राण आहवनीय हैं" जैसे गार्हपत्याग्निसे निकसनेवाला आहवनीय अग्नि है, तैसेही अपान वायु से निकसनेवाला प्राण वायु है, एतदर्थ प्राणवायु आहवनीय नामवाले अग्नि स्थानापन्न है अरु "व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो" "व्यानदक्षिणाग्निहै" व्यान वायुहै सो हृदयरूप देशसे दक्षिणवायु के छिद्रद्वारा निकलताहै इसही करके सो दक्षिण दिशाका सम्बन्धी है एतदर्थ वो दक्षि-णाग्निके स्थानापन्न है ३। ४४॥

४॥ हे सौम्य ! अब यहां इस चतुर्थवाक्य करके अग्निहोत्रके हवनका कर्त्ता ऋत्विक्रूप होता कहते हैं॥ पिप्पलादउवाच॥ हे गार्ग्य! "यदुच्छासनिःश्वासावेतावाहुती समंनयतीतिसमानः" "इन उच्छ्वास अरु निःश्वासरूप आहुतको समप्रवृत्तकरताहै सो समान है" अर्थात् जिस करके उच्छ्वास अरु निःश्वास यहदोनों आहुति हैं। क्योंकि अग्निहोत्र की दो आहुतिवत् सर्वदा दोनों की संख्या की समताहै। अरु तिसकरके यह दोनों आहुतिरूप हैं। अरु जो इन उच्छ्वास अरु निःश्वासरूप आहुतिको, अग्नि-होत्रके हवनकर्त्ता होतावत्, शरीर की स्थिति के निमित्त सम-भावसे जो वायु प्रवृत्तकरता है, तिसकरके सो वायु दोनों आ-हुतिका प्रवर्त्तक होनेसे पूर्वोक्ति के अनुसार अग्निस्थानापन्न हुआ २ भी होतारूप है, "[शंका "प्राणाग्नय" इसवाक्य से सर्व प्राणोंको अग्नित्व कहाहै, तब यहां समानवायु को होताकर के कैसे कहतेहैं॥ समाधान॥ हे सौम्य ! यद्यपि "प्राणाग्नयएवै

तस्मिन् पुरे जाग्रति । < पांचप्राणरूप अग्निही इसपुर बिषे जागते हैं > इस तीसरे वाक्य बिषे समानवायु को भी अग्निस्थानापन्न कहाहै सो सत्य है, तथापि ८, जैसे अग्निहोत्र बिषे हवन कर्त्ता ब्राह्मण दोनों आहुतियोंको आहवनीय नामवाले अग्निके प्रति समभावसे हवनकरताहै, तैसे ७ यह समानवायु उच्छ्वास अरु निःश्वासरूप दोनों आहुतियों को शरीर की स्थिति रहने के अर्थ समता करके प्रवृत्त करे है, एतदर्थ आहुति का प्रवर्त्तक होने से तिस समान वायु को होता नामसे कहते हैं । अरु समान वायु को होतापने के सिद्धभये जो अग्निपने का कथन है तिसका ,छत्रीवाले जातेहैं, इस वाक्य से जिसके पास छत्री है तिसका अरु तिससे भिन्न दूसरेका दोनों का ग्रहण होताहै । तैसेही अग्निरूप अरु तिससे भिन्नहोतारूप दोनों के ग्रहण बिषे यह लाक्षणिक अर्थ है] ॥ प्र० ॥ यह होता रूपवायु कौनसा है ॥ उ० ॥ सो होतारूप समान नामवाला वायु है । [तीनों अवस्थाओं से रहित अरु तीनों अवस्थामें वर्त्तमान उच्छ्वास अरु निःश्वासरूप प्राणोंकी अग्निहोत्र के अवयव रूपताके सम्पादन का उपासना रूपप्रयोजन नहीं, क्योंकि यहां निर्विशेष आत्माका प्रसंगहै ताते । अरु यहां तिस प्राणोंकी विधिका अभाव है ताते । किन्तु इन्द्रियां सोवे हैं अरु प्राणजागे हैं ऐसा कहा है । ताते यहां त्वं पद के शोधनरूप ज्ञानकी स्तुतिहीहै] एतदर्थ विद्वान् (कर्मउपासना के समुच्चय करनेवाले) का स्वप्न भी अग्निहोत्र का हवनही है । ताते विद्वान् कर्मसे रहित नहीं ऐसा मानना योग्य है । अरु । मनोहवाव यजमानः । < मन प्रसिद्ध यजमानहै > ७ स्वप्न बिषे पंचप्राणरूप अग्निके जागते हुये बाहर के करणोंको अरु विषयों को लय करके , अग्निहोत्र का फल जो स्वर्गतद्वत्, सुषुप्तिकाल बिषे ब्रह्मके अर्थ जाने को इच्छाकरता हुआ मन यजमानवत् प्रसिद्धजागता है । अर्थात् सो मन , जैसे यजमान यज्ञकी सर्व सामग्री में प्रधान होता है तैसे, कार्य अरु करणों बिषे प्रधान

अत्रैष देवःस्वप्ने महिमानमनुभवतियद्दृष्टं दृष्टमनु पश्यतिश्रुतंश्रुतमेवार्थमनुश्रृणोति देशदिगन्तरैश्चप्रत्य नुभूतंपुनःपुनः प्रत्यनुभवतिदृष्टञ्चादृष्टञ्चश्रुतञ्चाश्रुत ञ्चानुभूतञ्चाननुभूतञ्चसर्व्वःपश्यतिसर्व्वःपश्यति५। ४६

होने करके व्यवहार करनेसे, अरु 'जैसेयजमान स्वर्गार्थप्रस्थान पावता है तैसे, ब्रह्मरूप स्वर्ग के ताईं प्रस्थान को पायाहोने से यजमान है। ऐसाजानना अरु ८। इष्टफलमेवोदानः । ८ उदान यज्ञका फलही है ˃ ७ उदानवायु जो उत्क्रमण में प्रधान है सो यज्ञका फलही है काहेते कि यज्ञके फलकी प्राप्ति उदान वायुरूप निमित्त वाली है ताते [अर्थ यह है कि यजमानको मरणके अनन्तर उदानवायुरूप निमित्तवाले यज्ञादिकों के फलकी प्राप्ति है] ताते उस उदानवायु को यज्ञों के फलका निमित्त कारण होने से अरु कारण बिषे कार्य के आरोप होनेसे उदान वायुको इष्टफल करके कहा है ॥ प्र० ॥ उदानवायु को यज्ञका फलपना कैसे है ॥ उ० ॥ । सएनं यजमानमहरहर्ब्रह्मगमयति । ˂सोइसयजमान को दिनदिन बिषे ब्रह्म के अर्थ प्राप्तकरता है ˃सो उदान वायु इसमन नामवाले यजमान को स्वप्न वृत्तिरूपसे भी चलायमान करके नित्य नित्य सुषुप्ति कालबिषे अक्षरब्रह्मरूप स्वर्ग के ताईं ही प्राप्त करे है। अर्थात् [यद्यपि दिनदिनबिषे जोब्रह्मकीप्राप्ति होतीहै सो यज्ञका फलनहीं काहेते कि यज्ञ से रहितपुरुषको भी तिससुषुप्ति बिषे उस ब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै ताते।तथापि ब्रह्मकोही सर्वयज्ञों का फलपनाहै, ताते सुषुप्तिरूप द्वारकरके तिसब्रह्मके प्रापकउदानवायुको इष्टफलकी प्रापकताहै,यहभावहै]एतदर्थ उदानवायु यज्ञके फल के स्थानापन्न है ॥ इतिसिद्धम् ४। ४५ ॥

५ ॥ शङ्का । गार्हपत्यो हवा एषोऽपानो । ˂ यह अपानवायु गार्हपत्य नामवाला अग्निहै ˃ यहां से आरम्भकरके । मनो हवाव यजमान । ˂ मनरूपही प्रसिद्ध यजमान है ˂ इस श्रुतिपर्यन्त

जो कहा है तिसकरके विद्वान्कर्मी नहीं होता इसप्रकार विद्वा
की स्तुति किया है ऐसा तुमने कहा सो अस्तु। परन्तु इसप्रक
तहां अग्निहोत्रादि कर्मों की प्रतीति से उदानवायुको यज्ञकेफ
स्थानापन्न कहाहै तिसकरके तो इस यज्ञ का फलपना नहीं है
क्योंकि तहां कर्म की अप्रतीति है ताते ॥ समाधान ॥ यहां य
भावहै कि, श्रोत्रादि इन्द्रियां स्वप्न विषे सोवैं (उपरामहोवैं)
अरु प्राणही जागते हैं, इस स्वरूपवालीविद्यारूप विद्वत्ताहै ति
विद्वत्ताकी यहां स्तुति करते हैं। अरु इस उक्तविद्याको 'जागर
जो है सो श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों का धर्महै अरु शरीरका रक्षा
करना प्राणका धर्म है ताते इनमें आत्मा का धर्म कोईनहीं इ
प्रकारके स्वंपदके, विवेकरूप होनेसे उक्तविद्याकरके युक्तविद्वा
की स्तुति करने की योग्यताका सम्भवहै। अरुएतदर्थही प्राणक
जो जागरण है सो विद्वान् अरु अविद्वान् दोनोंको समानही है
तब अविद्वान्को त्यागके विद्वान्कीही स्तुति कैसेहै, ऐसी जोरही
शङ्का तिसका भी अभावभया, क्योंकि अविद्वान्का उक्तविद्याके
अविवेकका अभावहै ताते, विद्वान्कीही स्तुति है। हे सौम्य! इस
प्रकार विद्वान् को श्रोत्रादि इन्द्रियरूप करणों के उपरामकाल
से आरम्भकरके यावत् पर्य्यन्त सुषुप्तिसे उत्थानको प्राप्तहोताहै
तावत्पर्यन्त सर्व यज्ञ के फल के अनुभव होने से अविद्वानोंवा
अनर्थ के हेतुनहीं। इसप्रकार यहां विद्वत्ताकी स्तुति करते हैं
अरु जिसकरके केवल विद्वान्केही श्रोत्रादि इन्द्रियां सोवे हैं
अथवा प्राणरूप पांच अग्नि जागते हैं, अथवा जाग्रत् अरुस्वप्न
बिषे मन अपनी स्वतन्त्रता को अनुभवकरता हुआ नित्य नित्य
सुषुप्तिको प्राप्त होता है ऐसा नहीं ताते विद्वान्केही इन्द्रियादि
उपरामादि होते हैं इसप्रकार विधान करना योग्य नहीं, किन्तु
सर्व प्राणधारियोंको क्रम से जाग्रत् स्वप्न अरु सुषुप्ति यहतीनों
अवस्था बिषे जो गमन है सो समानहीहै। एतदर्थ यह विद्वान्
की स्तुतिही सम्भवे है॥ हे सौम्य! पूर्व जो गार्ग्यमुनिने तीसरा

प्रश्न कियाथा कि । कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति । (कौनसा यह देवस्वप्नोंको देखता है (तिसकाउत्तर पिप्पलाद मुनिकहते हैं कि हे गार्ग्य! । अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । (यहां यह देव स्वप्नबिषे महिमाको अनुभव करे है (अर्थात् प्रथम श्रोत्रादि इन्द्रियों के उपरामभये अरु देहकी रक्षार्थ प्राणादि पांचवायु के जागतेहुये सुषुप्तिकी प्राप्ति से पूर्व इस सन्धि में यहदेव ,जैसे सूर्य्य अपनी किरणों को अपने बिषे लयकरता है तैसे, अपने स्वरूप बिषे लयकियेहैं चक्षुरादि करण जिसने, इसप्रकारहुआ स्वप्नबिषे विषय अरु विषयीरूप अनेक वस्तुओं को आत्म (अपने) भाव की प्राप्तिरूप महिमा को अनुभव करताहै ॥ शंका ॥ महिमाके अनुभव करने विषे अनुभव कर्त्ताको करण जो है सो मनहै एत दर्थ सो मन स्वतन्त्र होनेसे कैसे अनुभव करताहै ॥समाधान॥ हे सौम्य !क्षेत्रज्ञ आत्मरूप जो देव है सो स्वतन्त्र हुआ भी महिमा का अनुभव करता हैं यह दोष नहीं है । क्योंकि क्षेत्रज्ञका जो स्वतन्त्रपना है सो मनरूप उपाधिका किया है । अरु परमार्थ से तो स्वयंक्षेत्रज्ञ न सोवता है न जागता है ताते तिसक्षेत्रज्ञ का जो जागना अरु सोवना है सो मनरूप उपाधि कृतही है ॥ तथाच । सधीः स्वप्नोभूत्वा ध्यायतीवेत्यादि । (बुद्धि सहितहुआ , आत्मा , स्वप्नरूप हो के ध्यावते हुयेवत् होता है इत्यादि > बृहदारण्यक उपनिषद् बिषे कहाहै । एतदर्थ देवशब्द करके उक्तमनको विभूत के अनुभव करने बिषे स्वतन्त्रपने का वचन युक्तही है ॥ हे सौम्य ! , कईएक वादी कहतेहैं कि क्षेत्रज्ञ को स्वप्नकाल बिषे मनरूप उपाधिकरके सहितहुये तिसक्षेत्रज्ञ को स्वयंज्योतिपने की प्रतिपादक श्रुति बाधको पावतीहै, सो बने नहीं । क्योंकि उनवादी पुरुषोंको श्रुत्यर्थ के अज्ञानसे भई भ्रान्ति है । अरु जिससे मनआदिक उपाधिकरके जन्य जो स्वयंज्योतिपने आदिका व्यवहार है सोभी मोक्ष पर्यन्त सर्व अविद्या (अविद्वान्) का विषयही है । क्योंकि । यत्र वा अन्यदिवस्यात्तत्रा-

न्योऽन्यत्पश्येन्मात्रं संसर्गस्त्वस्य भवति । < जहां वा अन्यव होय तहां अन्य अन्यको देखे अरु इस आत्माको विषयोंसे स म्बन्धहोता है > अरु । यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कंपश्ये त्यादिश्रुतिभ्यः । < जहां तो इस (पुरुष) को सर्व आत्मा होताभया तहां किसकरके किसको देखे > इत्यादिक बृहदार उपनिषद्के छठे अध्यायकी श्रुतिसे सिद्धहै ताते उक्त जो शंका सो मंद ब्रह्मवेत्ताओंकी ही करीहुई है , यथार्थ एकात्मवेत्ता नहीं, ॥ शंका ॥ हेभगवन् ! जैसा आप कहतेहो तैसा होनेसे । अ त्रायंपुरुषः स्वयंज्योतिः । < यहां यह पुरुष स्वयंज्योति है > इ श्रुति बिषे । अत्र । < यहां > ऐसा जो विशेषण है सोव्यर्थ हो गा ॥ समाधान ॥ हे सौम्य! हे वादी! यहतुम्हकरके अल्पही कहे हैं जिसकरके । यएषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेतेति । < अ यहअन्तर हृदय बिषे आकाश है तिसबिषे (आत्मा) रहताहै इसश्रुतिकरके अन्तर हृदयके परिच्छेद के भये अवश्यकरके आ त्माका स्वयंज्योतिपना बाधको पावेगा ॥ अरु जो कहे कि यद्यपि यह उक्त दोष होगा, यह आपका कहनासत्यही है, तथापिस्वप्न बिषे आत्माको केवल (मनकेअभावयुक्त) पनेसे स्वयंज्योति होने करके तिस आत्माका आधा ओज (प्रतिबन्धक) दूरभया अरु [अवशेष रहा जो आत्मा तिसका बोध सुषुप्ति बिषे होगा यह तेरा अभिप्राय है] सो कहना बनेनहीं । क्योंकि वहां (सु षुप्तिबिषे) भी । पुरीततिशेतेति । < पुरीतति नामवाली नाड़ी बिषे रहता है > इस श्रुति करके < पुरीतति नामवाली ना ड़ियों का सम्बन्ध रहता है ताते ॥ अरु जो ऐसाकहे कि वह स्वप्न मेंभी पुरुषको स्वयंज्योति होनें से जब आधे ओजके दूर होने का अभिप्राय मिथ्याही है ॥ तब । अत्रायंपुरुषः स्वयंज्यो तिर्भवति । < यहां यह पुरुष स्वयंज्योति होताहै > यहकहना कैसे बनेगा । अरु जो कहो कि अन्यशाखान्तर रहने से यहश्रुतिअन्य श्रुतिकी अपेक्षासे रहती है सोभीबने नहीं क्योंकि सर्व श्रुतियों

के अर्थ की जो एकता है सोई इच्छित है ताते। अरु सर्व वेदान्त शास्त्रों का अर्थ रूपएकही आत्मा आचार्य करके जनावनेको अरु जिज्ञासुओं करके जानने को इच्छित है। एतदर्थ श्रुति को यथार्थ तत्त्व की प्रकाशक होनेकरके स्वप्नविषे आत्मा के स्वयं ज्योतिपनेका संभव कहने को युक्त है। ऐसे वादी ने कहा। तब सिद्धान्ती कहे हैं कि हे वादी ! जब तू इसप्रकार जानता है तब अपने सर्व अभिमान को त्यागके इस बृहदारण्यकी श्रुतिका अर्थ श्रवणकर, क्योंकि अभिमान के होते तो सौवर्ष पर्यन्त भी अपने को पण्डित माननेवाले पुरुषों करके श्रुतिका अर्थ जानने को शक्य नहीं। ताते यहां श्रुतिका यह अर्थ है कि जैसे हृदयाकाश विषे अरु पुरीतति नामवाली नाड़ियों विषे स्वप्नको प्राप्त हुये आत्माका उत्तस्थान अरु तिनके धर्म से सम्बन्धका अभाव है, ताते आत्मा उन्हों करके (चन्द्रशाखा न्याय प्रमाण) विवेचनकरके देखावने को शक्य होता है। एतदर्थ आत्माका स्वयं ज्योतिपना बाधको पावता नहीं। इसप्रकार अविद्या अरु काम अरु कर्मरूप निमित्तों से उद्भवताको प्राप्तभई जो वासना तिस वासनावाले मनविषे कर्मरूप निमित्तवाली वासनामय अविद्या से अन्यको अन्यवस्तुवत् देखनेवाले, अरु समस्त कार्य अरु करणसे विवेचन कियेहुये द्रष्टाको दृश्यरूप वासना से पृथक् होने करके तिसका स्वयं ज्योतिपना, नित्य गर्वित नैयायिकों से भी निवारण करनेको शक्य नहीं। ताते करणों के मनविषे लीनहुये अरु मनके अलीनहुये मनोमय देव स्वप्नों को देखताहै। यह आचार्य (पिप्पलाद) ने श्रेष्ठकहाहै ॥प्र०॥ हे प्रभो ! कैसे महिमाको अनुभव करता है ॥ उ०॥ हे सौम्य ! । यद्दृष्टंदृष्टमनुपश्यतिश्रुतंश्रुतमेवार्थमनुशृणोति । २ जिसको देखाहै (तिसको) देखेहुयेवत् मानता है (अरु) सुने अर्थको पीछे सुनेहुयेवत् मानता है ; अर्थात् जिस मित्र वा पुत्रादिकों को पूर्व देखता भयाहै तिनकी वासना करके युक्त भया, पुत्र या मित्रादिकों की वासना से उत्पन्न हुये

सयदातेजसाऽभिभूतोभवति अत्रैषदेवःस्वप्नान्न
श्यत्यथतदैतस्मिञ्छरीरेएतत्सुखंभवति ६ । ४७ ॥

दृष्टवस्तुको पुत्र अरु मित्रवत् अविद्या करके देखेहुयेवत् मानता है । तिसही प्रकार जो अर्थ सुना है तिसही सुने अर्थ को तिस की वासनावश पीछे सुनेहुयेवत् मानता है । अरु ऽ । देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतंपुनःपुनः प्रत्यनुभवति । ऽ देशसे अरु दिशान्तर से बारम्बार अनुभव किये को अनुभव करता है ; ऽ नदी के तट आदि अन्य देशों से अरु पूर्वादि अन्य दिशाओं से बारम्बार अनुभव किया जो वस्तु तिनको अविद्या करके अनेक दिनों विषे वर्त्तमान अनेक स्वप्न बिषे अनुभव करता है । अरु ऽ । दृष्टञ्चादृष्टञ्च श्रुतञ्चाश्रुतञ्चानुभूतञ्चानुभूतञ्च सर्व्वंपश्यति सर्वःपश्यति । ऽ देखे अरु न देखे, सुनेअरु न सुने, अनुभवकिये अरु न अनुभव किये सर्वको देखताहै सबहुआ देखता है ; ऽ तैसेही अन्यजन्म बिषे देखे अरु इस जन्मबिषे न देखे वस्तुको अरु तैसेही अन्य जन्मबिषे सुने अरु इसजन्म बिषे न सुने वस्तु को अरु तैसेही अन्य जन्मबिषे मन करकेही अनुभव किये अरु इस जन्मबिषे केवल मनसे न अनुभव किये अर्थात् जलादि सत्यरूप अरु मरीचिजल आदिक असत्यरूप, किन्तु बहुत कहने से क्या है, इन सर्व वस्तुको जो देखता है सो सर्व मनकी वासनारूप उपाधिवाला हुआ देखताहै इसप्रकार सर्व करणरूप मनोमय देवस्वप्नोंको देखता है इतिसिद्धम् ५ । ४६ ॥

६ ॥ हे सौम्य ! अब गार्ग्यमुनिका जो चतुर्थप्रश्न है कि, यह सुख किसको होता है, तिसका उत्तर जो पिप्पलादमुनिने कहा है तिसको भी श्रवण करो ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे गार्ग्य ! । सयदातेजसाऽभिभूतोभवति । ऽ सो जिसकाल विषे तेज करकेपराभव होता है ; अर्थात् सो मनरूप देव जिस कालबिषे चिन्ता नामवाले सूर्य के तेजकरके नाड़ीरूप शय्याबिषे सर्वओरसे परा-

स यथा सौम्यवयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते।
एवं हवैतत्सर्व्वं परआत्मनि सम्प्रतिष्ठते ७। ४८

भवको प्राप्त होता है अर्थात्, वासनाके उद्भवके द्वाररूप स्वप्नभोग के दाता जे कर्म तिनके तिरस्कार करके युक्त होता है तब इन्द्रियों सहित मनके वासनारूप किरण हृदय बिषे लीनहोते हैं। तब मन वनके अग्निवत् सामान्यज्ञान अर्थात्चैतन्य, रूपता करके सम्पूर्ण शरीरबिषे व्याप्त होके स्थितहोता है, तब सुषुप्तिको प्राप्त होता है, तब ऽ। अत्रैषदेवः स्वप्नान्न पश्यति। ८ यहां यह देव स्वप्नों को नहीं देखता; ऽ तिसकाल बिषे मन नामवाला देव स्वप्नों को देखता नहीं क्योंकि देखने के जे द्वारहैं सो तेजकरके निरोधको पावते हैं। अरु ऽ। अथतदैतस्मिञ्छरीरेएतत्सुखं भवति। ८ पीछे तब इस शरीर बिषे यह सुखहोता है; ऽ अर्थात् जो बाधरहित सामान्यरूपसे शरीरबिषे व्यापक प्रसन्नज्ञानरूप स्वरूपसुख है सो यह अर्थ है ६। ४७॥

७॥ हे सौम्य! [कहे प्रकार इस षष्ठवाक्य करके आनन्दमय कोश शब्दका वाच्य अस्पष्ट अरु मन आदिकों को वासनावाला ज्ञान, सुषुप्तिका धर्मी है, इस प्रकार गार्ग्यमुनिके। कस्यैतत्सुखं भवति। ८ किसको यह सुखहोताहै; इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर पिप्पलादमुनिने कहा॥ अब इस सातवें वाक्यकरके गार्ग्यमुनिके। कस्मिन्नुसर्व्वे सम्प्रतिष्ठिताभवन्तीति। इसपंचमप्रश्नका उत्तर, विवेकी सुगमतासे तुरीय स्वरूपोंको विवेचन करके कहते हैं] इसकालबिषे अविद्या अरु काम अरु कर्मरूप कारणसे भये जे कार्य अरु करण सो निवृत्त होते हैं। अरु तिनके निवृत्तहुये उपाधियों से विपरीत भासमान जो आत्मास्वरूप सो अद्वैत एक शिव (सुखरूप) शान्त होताहै एतदर्थ इसही सुषुप्ति अवस्था को पृथिवी आदिक भूत अरु अविद्यारचित्त तिनकी मात्रा के विवेककरके अक्षरब्रह्मबिषे प्रवेशसे देखावनेको दृष्टान्त कहते हैं

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौ चादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ च गन्तव्यञ्च मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोधव्यञ्चाहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च ८ । ४९ ॥

। स यथा सौम्यवयांसि वासो वृक्षंसम्प्रतिष्ठन्ते । ८ हे सौम्य! जैसे पक्षी वासार्थ वृक्षकेताईं जाते हैं ; अर्थात् पक्षी जो हैं सो निवासकरने के अर्थ वृक्षप्रति जाते हैं ॥ तैसे यहदृष्टान्तहै ऽ । एवं हवैतत्सर्व्वं पर आत्मनिसम्प्रतिष्ठते । ८ ऐसे प्रसिद्ध सो सर्व परमात्माबिषे जाताहै ; ऽ इसही प्रकार प्रसिद्ध सो जो आगे कहैंगे सर्व जगत् अविनाशीरूप परमात्माबिषे लयहोताहै ७ । ४८

८ ॥ हे भगवन्! जो सर्व जगत् परमात्माबिषे जाताहै सो कौनहै ॥ उ० ॥ हे सौम्य! इसको भी श्रवणकरो । पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्राच तेजश्चतेजोमात्राच वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा । ८ पृथिवी अरु पृथिवी की मात्रा (गन्ध) । पुनः जल अरु जलकीमात्रा (रस) । पुनः तेज अरु तेजकी मात्रा (रूप) । पुनः वायु अरु वायुकी मात्रा (स्पर्श) । पुनः आकाश अरु आकाशकी मात्रा (शब्द) । अर्थात् गंधादि तन्मात्रारूप अपंचीकृत पंच महाभूत सूक्ष्म । अरु पृथिव्यादि पंचीकृत महाभूत स्थूल । अरु ऽ । चक्षुश्चद्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौ

चादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्चविसर्जयितव्य ञ्च पादौ च गंतव्यञ्च । (चक्षु अरु देखने योग्य वस्तु,श्रोत्रअरु सुननेयोग्य वस्तु, पुनः घ्राण अरु गन्ध लेनेयोग्य वस्तु, पुनः रसना अरु रस लेने योग्य वस्तु, पुनः त्वचा अरुस्पर्श करनेयोग्य वस्तु वाचा अरु बोलनेयोग्य वस्तु पुनः दो हाथ अरु लेने देने योग्य वस्तु, पुनः उपस्थ (लिंग) अरु आनन्द देनेयोग्य वस्तु, पुनः पायु (गुदा) अरु त्यागनेयोग्य वस्तु, पुनः दो पाद अरु चलने योग्य वस्तु) अर्थात् यहां ज्ञानेन्द्रियां अरु कर्मेन्द्रियां बाह्यकरण अरु तिनके विषयक हैं । अरु । मनश्चमन्तव्यञ्च बुधिश्चबोधव्यञ्चाहंकारश्चाहंकर्त्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च । (मन अरु मननकरने के योग्य वस्तु, पुनः बुद्धि अरु जाननेयोग्य वस्तु, पुनः अहंकार अरु अहं करने योग्य वस्तु, पुनः चित्त अरु चिन्तन करने योग्य वस्तु पुनः प्रकाश अरु प्रकाशने योग्य वस्तु पुनः प्राण अरु धारण करने योग्य वस्तु) अर्थात् उक्तमन अरु मनन करनेयोग्य वस्तुरूप तिसका विषय, अरु निश्चय आत्मकरूपा बुद्धि अरु जानने योग्य वस्तुरूप तिसका विषय अरु अभिमान आत्मक अन्तःकरण रूप अहंकार अरु अभिमान करने योग्य वस्तु रूप तिसका विषय, अरु चेतनावृत्त्यात्मक अन्तःकरणरूप चित्त अरु चिन्तन करनेयोग्य वस्तु रूप तिसका विषय, अरु त्वचा इन्द्रिय से भिन्नप्रकाश युक्त चर्मरूप तेज अरु तिससे प्रकाश करनेयोग्य सोई तेजकारूप वस्तु तिसका विषय । अरु जिसको सूत्रात्मा कहते हैं ऐसा जो प्राण सो अरु तिस प्राणसूत्रात्मा करके धारण करनेयोग्य सर्वकार्य करण का संघातरूप यह पर अर्थात् अपने से इतरके अर्थ होने करके मिश्रित हुआ नाम रूपात्मक जगत् तिसका उपाधिभूत इतनाही सर्व है ८ । ४६ ॥

९ ॥ हे सौम्य ! यह जो तुझको कहा इस सर्वसे पर जो जगत्

एषहि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बो-
द्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्र-
तिष्ठते ९।५०॥

का कर्त्ता आत्मस्वरूप है सो सूर्य के अर्थात् जलादिगत सूर्य के
प्रतिबिम्ब आदिकोंवत् भोक्तापने अरु कर्त्तापने करके इसवि-
प्रवेश को पाया है एतदर्थ। एषहिद्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता
रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुष। ‹ यह ही दे-
खनेवाला स्पर्श करनेवाला सुननेवाला स्वादका लेनेवाला
मननकरनेवाला जाननेवाला करनेवाला अरु विज्ञानात्मा पु-
षहै › अर्थात् जिसकरके जानते हैं ऐसा जोकरणरूप बुद्धिआदि-
क बिज्ञानहै सो यह नहीं, किन्तु यह तो जो जानताहै ऐसा कर्त्ता
अरु कारकरूप विज्ञानहै तिस विज्ञानरूप स्वभाववालाहै अर्थात्
विज्ञाता स्वभाववालाहै एतदर्थ विज्ञानात्मा कहते हैं। अरु ति-
सहीको कार्य अरु करणके संघातरूप उक्त उपाधियों बिषे पूर्ण
होनेसे पुरुषकहते हैं। स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते।
सो अक्षररूप परमात्माबिषे लीनहोताहै सो पुरुष जैसे जलादि
आधारके शोषणहुये सूर्यादिकोंके प्रतिबिम्ब सूर्यादिकों बिषे प्रवे-
शको पावते हैं तैसेही अक्षररूप परमात्माबिषे लीनहोताहै ९।५।

१०॥ हे सौम्य! अब तिस जीवात्मा अरु परमात्माकी अभे-
दताके जाननेवाले को जो ब्रह्म प्राप्तिरूप फलहोताहै सो कहते
हैं। यस्तु सौम्य। ‹ हे सौम्य! जो › । स यो ह वै। ‹ । कोई कहीं
सर्व ईषणा से रहितहुआ । तदच्छायमशरीरमलोहितं
शुभ्रमक्षरं वेदयते। ‹ तिसअछाय अशरीर अलोहितशुद्ध अक्षर
को जानताहै › अर्थात् । तिस अज्ञानरहित अरु शरीररहित अरु
लोहितादि गुणरहित । [अर्थात् अज्ञानादि तीन विशेषण से
रहित कहने से कारण अरु सूक्ष्म अरु स्थूल इनतीनों शरीरोंका
निषेधहै तिसकरके अवस्था तीनोंका भी निषेध होताहै, तिस

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरी
रमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्व्वज्ञः
सर्वोभवति तदेषश्लोकः १०। ५१॥

निषेधसे आत्माका जो तीनों अवस्थासे रहितपनाहै तिसकाअनु-
वाद करतेहैं] ऽ अरु नामरूपादि सर्व उपाधिके शरीरसे रहित,
अरु रक्तादि द्रव्यवत् रक्तादि सर्वगुण रहितहैं। हे सौम्य! जिस
करके ऐसा है इसही से शुद्ध है अरु सर्व विशेषणों से रहित है
ताते अक्षर ऽ सत्य पुरुष नामवाला प्राणरहित मनका अविषयं
शिव रूप शान्त बाहर भीतर की कल्पना से रहित अजन्मा, ऽ
को जानता है ऽ। परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स। ‹ सो परम अ-
क्षरकोही प्राप्त होता है › सो पुरुष परब्रह्मरूप अक्षर कोही
पावता है। ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति। अरु जो सर्वका त्यागी हुआ
जानता है ऽ। स सर्व्वज्ञःसर्वोभवति तदेषश्लोकः १०। ‹ सो
सर्व्वज्ञ है सर्व होताहै तिस बिषे यह श्लोक (प्रमाण) है › ऽ
सो ज्ञानवान् सर्वज्ञ होता है। अर्थात् तिस अक्षर के जाननेवाले
से अज्ञात कुछ भी संभवता नहीं ॥ शंका ॥ सर्व्वात्मभाव को
ज्ञानकरके जन्यताके होनेसे तिस सर्व्वात्म भावका अनित्यपना
होता है ॥ समाधान ॥ पूर्व अविद्या करके असर्वज्ञ था पश्चात्
आचार्य के उपदेशसे विद्याकरके अविद्या के अभाव भये सर्वरूप
होताहै उपजता नहीं, अरु तिसही अर्थबिषे यह अग्रिम (आगे)
कहने का वाक्य रूप श्लोक (वेदका मंत्र) प्रमाण है १०। ५१॥

हे सौम्य! पिप्पलादमुनि कहते हैं कि। सौम्य। ‹ हे प्रियदर्शन!
हे गार्ग्य! › । सहदेवैश्च सर्व्वैः प्राणाभूतानि सम्प्रतिष्ठन्तियत्र।
‹ सर्वदेवताओं करके (सहित) इन्द्रिय (अरु) भूतजिसबिषे
प्रवेश को पावते हैं › अर्थात् समस्त अपने अधिष्ठाता देवताओं
करके सहित चक्षुरादि इन्द्रिय अरु पृथिव्यादि भूत जिस अक्षर
बिषे प्रवेश को पावते हैं ‹। तदक्षरंयस्तु। ‹ तिस अक्षरको जो ›

विज्ञानात्मा सहदेवैश्च सर्व्वैः प्राणाभूतानि सं
तिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेदयतेयस्तुसौम्यससर्व्वज्ञःस
मेवाविवेशेति ११ । ५२ ॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषदिचतुर्थ प्रश्नःसमाप्तः ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतपंचमप्रश्नः ॥

अथहैनंशैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ । सयोहवैतद्भ
वन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत कत
वसतेन लोकं जयतीति १ । ५३ ॥

। विज्ञानात्मा । < जीव > अर्थात् ८ तिस सर्व के आश्रयरूप अक्ष
को जो उक्त अर्थ का जिज्ञासु (ग्राहक) जीवात्मा वेदयते। <जा
नताहै > । स सर्वज्ञःसर्वमेवाविवेशेति । < सो सर्वज्ञहुआ स
के ताईंही प्रवेश को पावता है > अर्थात् सर्वज्ञ सर्वात्मा
होताहै ११ । ५२ ॥

इति प्रश्नोपनिषद्गतचतुर्थप्रश्नभाषाटीकासमाप्ता ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत पंचमप्रश्न भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

१ ॥ हे सौम्य! हे प्रियदर्शन! [इसप्रकार चतुर्थ प्रश्नबिषे कहे
प्रमाण उत्तमाधिकारी को पदार्थ के शोधन पूर्वक वाक्यार्थ के
ज्ञानसे अक्षर ब्रह्मकी प्राप्तिकहके अब इसबिषे मध्यमाधिकारी
मन्द वैराग्यवाले अरु "ॐ" ऐसे आत्माको ध्यान करनेवाले
ऽ। प्रणवोधनुः । < ॐकार धनुष है > इत्यादि मुंडक उपनिषद्
के मंत्रसे सूचितकिया जो ब्रह्मलोककी प्राप्ति तिसद्वारा क्रम

करके अक्षर ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ ॐकारकी उपासना कहने को पंचम प्रश्नको प्रकट करते हैं] अब गार्ग्यमुनिके प्रश्न के निर्णय भये पश्चात् परब्रह्म अरु अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होने करके ॐकारकी उपासनाके करने की इच्छासे पंचम प्रश्न का प्रारंभकरते हैं । अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ । ८ तिसके पश्चात् इसको शिबिका पुत्र सत्यकाम पूछताभया ; अर्थात् गार्ग्यमुनिके पश्चात् इस निर्णयकर्त्ता पिप्पलादमुनिको शिबिऋषिका पुत्र सत्यकाम नामामुनि पूछताभया ॥ सत्यकाम उवाच ॥ । सयोहवै तद्भगवन्मनुष्येषु । ८ हे भगवन् ! मनुष्योंके मध्य सो अद्भुतवत् है सो जो (कोई एकमनुष्य) ; । प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत । ८ मरणपर्यन्त ॐकार को सन्मुख ध्यान करे ; अर्थात् जो कोई एक मनुष्य शरीरके पातहोने पर्यन्त इस ॐकार को सन्मुख होने करके चिन्तन करे । अर्थात् जो बाह्यके विषयों से निवृत्त किये इन्द्रियों वाला अरु भक्तिकरके आरोपित किया है ब्रह्म भाव जिस विषे ऐसे ॐकार विषे एकाग्रचित्तवाला अरु उच्छेद (विनाश) रहित आत्माकार वृत्तिवाला अरु अनात्माकार वृत्तिरूप अन्तराय (व्यविधान) से रहित हुआ , जैसे वायुकरके रहित स्थानविषे स्थित जो दीपक तिस दीपक की शिखा के समान निश्चल चित्तवाला होय, अरु सत्य भाषण ब्रह्मचर्य अहिंसा अपरिग्रह (दान न लेना) त्याग (दान देना) सन्न्यास (संग्रहका त्याग) शौच (पवित्रता) संतोष निष्कपट भाव इत्यादि अनेक यम नियम से अनुग्रह को पाया होय, सो पुरुष आश्चर्यवत् है ८ । कतमं वाव स तेन लोकंजयतीति । ८ सोतिससे कौनसेलोकको पावताहै; हे भगवन् ! सो इसप्रकार यावत्पर्यन्त जीवत रहै तावत्पर्यन्त नियम की धारणावाला पुरुष उपासना अरु कर्मों करके जो पावनेयोग्य अनेक लोकहैं तिनमें से तिस ॐकारके अभिध्यान करने से कौनसे लोकको पावताहै १ । ५३ ॥

तस्मैसहोवाचएतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्चब्रह्मयदे ङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति २ । ५४।

२ ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार जब सत्यकाम मुनिने प्रश्न किय तब ८ । तस्मै सहोवाच । ६ तिसको सो कहताभया ; ७ तिसप्र श्नकरनेवाले सत्यकाम नामक अपने शिष्यप्रति सो पिप्पलाद मुनिनामा आचार्य स्पष्ट कहताभया [इस उपासनाको ॐकार के अभिध्यानरूप होनेसे दहरा काशादिकोंकी उपासनावत् अप ब्रह्मकी प्राप्तिका साधनही है, अथवा परब्रह्मकी प्राप्तिका भी साधनहै । इसप्रकारसे प्रश्नकरनेवाले शिष्यके अभिप्रायके जान नेवाले सर्व्वज्ञ पिप्पलादमुनि कहतेभये कि यह ॐकार अपर ब्रह्मके आलम्बनहोनेसे जब तैसा ध्यानकरिये तव अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होताहै अरु परब्रह्मके आलम्बनहोनेसे जब ॐ कारका तैसा ध्यानकरिये तब सो क्रमसे परब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होता है ८ । एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एत दालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते । ' ऐसा उत्तर कहते हैं, ॥ पिप्पलादउवाच ॥ । एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदों कारः । ६ हे सत्यकाम ! यह जो परब्रह्म अरु अपरब्रह्महै सो ॐ कारही है ; अर्थात् हे सत्यकाम ! यह जो सत्य अक्षर पुरुष इत्यादि नामोंकरके परब्रह्महै अरु सर्वसे प्रथम उत्पन्नभया प्राण (सूत्रा त्मा) नामकरके अपरब्रह्महै सो उभयप्रकार का ॐकारही है । क्योंकि ॐकाररूप प्रतीकवालाहै ताते ॥ शंका ॥ ब्रह्म अरु ॐ कारके भेदसे तिनकी एकता कैसे बने ॥ समाधान ॥ तिनकी एकता आरोपसे बनती है । यहां यह भावहै कि इस ब्रह्म अरु ॐकारके एकअर्थ विषे तात्पर्यरूप सामानाधिकरणसे ॐकारका प्रतीकपना उपदेशकरते हैं। जैसे शालग्रामादि पाषाणविषे विष्णु आदिक बुद्धि करनी तैसे, । जिस और विषे औरकी बुद्धि करिये सो तिसका प्रतीक कहते हैं । यहां ब्रह्मसे इतर जो वर्णात्मक

सयद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्ण
मेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनय
न्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान
मनुभवति ३। ५५ ॥

ॐकार तिसबिषे ब्रह्मकी बुद्धिकरतेहैं एतदर्थ ॐकार ब्रह्मका प्र-
तीकहै। जैसे विष्णु आदिकोंके शालग्रामादि,] अरु जिसकरके
सर्व धर्मके भेदसे रहित परमात्मा शब्द आदि प्रमाणोंकरके सा-
क्षात् बोधकरनेके अयोग्यहै, एतदर्थ इन्द्रियोंके अगोचरहोने से
केवल करणरहित मनसे भी जाननेको शक्यनहीं, किन्तु, जैसे
शालग्रामादिबिषे आरोपितकरतेहैं विष्णुभाव तैसे, भक्तिकरके
आरोपकिये बूह्म भाववाले ॐकारके सम्यक् ध्यानकरनेवाले पुरुष
को सो जानने में आवताहै, इसबिषे शास्त्रका प्रमाण है ताते।
अरु इसही प्रकार अपरब्रह्म भी जाननेमें आवताहै। एतदर्थ जो
पर अरु अपररूप बूह्महै सो ॐकारहै। इसप्रकारका आरोपकरते
हैं ८। तस्माद्विद्वानेते नैवायतने नैकतरमन्वेति। ९ ताते ऐसे
जाननेवाला इस ध्यानसेही दोनोंमें से एकको पावताहै; ७ एत
दर्थ इसप्रकार जाननेवाला विद्वान् पुरुष इस ॐकारके ध्यानरूप,
आत्माकी प्राप्तिके साधन रूप साधनके आश्रयसेही परब्रह्म अरु
अपरबूह्म इन दोनोंमें से एकको पावताहै ॥ कि जिसकी प्राप्तिकी
इच्छासे करताहै २। ५४॥

३॥ हे सौम्य! जो पुरुष, बूह्मका समीपवर्ती श्रेष्ठ आलम्बन
अर्थात् उपकार साधक अरु अकार आदिक तीनमात्रावाला जो
ॐकार सो उपासनाकरनेके योग्यहै इसप्रकार यद्यपि ॐकारकी
अकारादि सर्वमात्राके विभागका यथार्थजाननेवाला न होय,कि-
न्तु ॐकारकी एकअकारमात्रा उपासना करनेयोग्यहै इसप्रकार
जानताहै। तथापि सोदुर्गतिको प्राप्तहोतानहीं, किन्तुएकमात्रारू-
पहीॐकारकेध्यानकेप्रभावसे इसलोकबिषे श्रेष्ठगतिकोही पावता

है । यह इस तृतीयवाक्यका तात्पर्य है, अब इसके अक्षरार्थकोश्र-वणकरोहेसौम्य! । स यद्येकमात्रमभिध्यायीत सतेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । (सो जब एकमात्रारूपको ध्यान करताहै सो तिससेही भलीप्रकार जानताहुआ शीघ्रही जगत् बिषे पावताहै ; अर्थात् इसप्रकार सो जब एकमात्राकेही विभाग का जाननेवाला सर्वदा एकमात्रारूप ओंकारको ध्यानकरता है सो पुरुष एकमात्रापने करके युक्त ओंकारके ध्यानसेही तिसमात्र के सम्यक्प्रकार बोधवान् हुआ शीघ्रही जगत् (पृथिवी) बिषे जन्म पावताहै । अरु ८ । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते । (तिसको मनुष्य शरीरको ऋग्वेद प्राप्तकरे है ;) तहां पृथिवी बिषे अनेक जन्म हैं तिन बिषे तिस ॐकार के साधक को मनुष्य लोक (शरीर) के अर्थही ऋग्वेदरूप । स ऋग्वेद इतिश्रुतेः । (अकार ऋग्वेदहै ; । इस श्रुतिसे अकाररूप ॐकारकी प्रथम मात्रा को ऋग्वेदरूपताहै ओंकारकी प्रथम एकमात्रा जो है सो प्राप्त करे है । अरु ९ । स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ३ । (सो तिसबिषे तपसे ब्रह्मचर्य से श्रद्धा से सम्पन्नहुआ महिमाको अनुभव करताहै ;) सो साधक तिस प्रथम मात्रारूप ॐकारके ध्यानसे तिस मनुष्यजन्मबिषे द्विजोत्तमहुआ अरु तपकरके ब्रह्मचर्यकरके अरु श्रद्धाकरके सम्पन्न हुआ महिमा (विभूति) को अर्थात् धन पुत्र क्षेत्र दासादि वैभवको अनुभवकरताहै । परन्तु श्रद्धा रहितहुआ यथेष्ट आचरण को करता नहीं । एक देशके ज्ञानसे रहित जो योगभ्रष्ट है सो कदाचित् भी दुर्गतिको पावता नहीं । ऐसा गीताका प्रमाणहै । ताते ॐकारकी एकमात्राके ध्यानकरनेवालेको कहेहुये फलका असम्भव नहीं । इति सिद्धम् ३ । ५५ ॥

४ ॥ हे सौम्य ! । अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते । (पुनः जब दो मात्राकरके युक्त मनबिषे पावताहै ; अर्थात् पुनः एक मात्रारूप ॐकारके उपासक से इतर जब दोमात्राके विभागका

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । ससोमलोकं ससोमलोके विभूतिमनुभूयपुनरावर्त्तते ४ । ५६ ॥

ज्ञाता जो पुरुष दोमात्रारूपसे युक्त ॐकारको ध्यान करताहै, सो स्वप्नरूप मननकरने योग्य यजुर्वेदमय चन्द्ररूप देवतवाले मन बिषे भलीप्रकार एकाग्रतासे आत्मभावको प्राप्तहोताहै ८। सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । ससोमलोकं । ८ सो यजुर्वेद से अन्तरिक्षलोकवाले चन्द्रलोकको प्राप्तहोताहै ; ७ सो इसप्रकार आत्मभावको प्राप्त मरणरहित हुआ द्वितीयमात्रारूप यजुर्वेद से अन्तरिक्षरूप आधारवाले द्वितीयलोकरूप चन्द्रलोकके अर्थप्राप्त होता है । अर्थात् तिस द्वितीयमात्राके उपासक साधकको यजुर्वेद जो है सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्मको देता है ८। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ४ । ८ सो चन्द्रलोक बिषे विभूतिको अनुभवकरके फेर आवताहै ; ७ सो उपासक तिस चन्द्रलोकबिषे उत्तम पदार्थोंको भोगके पुनः इस मनुष्यलोक बिषे (ब्राह्मणादि उत्तमकुल में) जन्म पावताहै ४ । ५६ ॥

५॥ हे सौम्य ! यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परंपुरुषमभिध्यायीत । ८ जो पुनः तीनमात्रावाले ॐ इसही अक्षरसे इस परम पुरुषको ध्यान करता है ; अर्थात् जो पुरुष पुनः तीनमात्रा के विषय करनेवाले ज्ञानयुक्त ॐ इस प्रकारके इसही अक्षररूप प्रतीकसे इस ॐकार रूप सूर्य्यके अन्तरगत परंपुरुष को ध्यान करता है ८। स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः । ८ सो तेजरूप सूर्य्य बिषे प्राप्त होता है ; ७ सो तीसरी मात्रारूप ध्यान करता हुआ, मराहुआ भी तिस ध्यानमात्रसे तेजरूप सूर्य्य बिषे प्राप्तहोताहै । अरु सो सूर्यसे, चन्द्रलोकादिकों बिषे गयेहुये जैसे फेर आवते हैं तैसे, पुनरावृत्तिको पावतानहीं किन्तु सूर्यबिषे प्राप्तहुआही होताहै । अरु ८। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं हवै स

यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परंपुरुषमभिध्यायीत सतेजसिसूर्ये सम्पन्नः यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत । एवं हवै स पाप्मना विनिर्मुक्तः सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं सएतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौश्लोकौभवतः ५ । ५७ ॥

पाप्मना विनिर्मुक्तः ।(जैसेसर्प त्वचा से छूटजाताहै ऐसे प्रसिद्ध ही सो पापसे मुक्त होताहै ;) जिसप्रकार सर्प अपनी त्वचासे मुक्तहोताहै, पश्चात् जीर्णत्वचासे छूटाहुआ सो सर्प पुनः नवीन होताहै । हे सौम्य! जैसे यह दृष्टान्तहै । तैसेही प्रसिद्ध सोतीन मात्राका ध्यान करनेवाला साधक सर्पकी त्वचास्थानापन्न अपने अशुद्धयादिरूप पापसे मुक्तहोता है । अरु (। ससामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं ।(सो सामसे ऊंचे ब्रह्मलोकको पावताहै ;) जब अशुद्धतारूप पापसे मुक्त होता है तब पीछे सो साधक तृतीयमात्रारूप सामवेदकरके ऊंचे हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मके सत्यनामवाले लोक (सत्यलोक) को प्राप्तहोता है (सो हिरण्यगर्भ सर्व संसारी जीवोंका आत्मरूपहै अरु ।जिसकरके सो हिरण्यगर्भ समष्टि लिंगदेहरूपकरके सर्व भूतोंका अन्तरात्माहै तिसकरके समष्टिलिंगशरीररूप हिरण्यगर्भविषे व्यष्टिलिंगदेहोंके अभिमानी सर्वजीव मिलेहुये हैं । एतदर्थ सो हिरण्यगर्भ जीवघनरूपहै ॥ वाक्य योजना । स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते ।(सो इसपर जीवघनसे पर पुरियोंविषे स्थित पुरुषको देखताहै ;) सो विद्वान् तीसरी मात्राको ध्यानकरता हुआ इससर्वसे उत्कृष्ट जीवघनरूप हिरण्यगर्भसे पर परमात्मानामवाले सर्वशरीररूप पुरियां विषे स्थितपुरुषको देखताहै [यहां इसरीतिसे अन्वयहै । सो विद्वान् साधक अभी इस अपनी जीवनदशा विषे ध्यान करता हुआ शरीरावसान के पश्चात् ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है । तहां ब्रह्मलोकविषे स्थावर जंगमरूप

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्याभ्यन्तर मध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पतेज्ञः ६। ५८॥

प्राणियों से पर जो जीवघननामक हिरण्यगर्भ तिससे पर जो परमात्मापुरुष तिसको अपना आप देखता है]। तदेतौ श्लोकौ भवतः। < तहां यह दो मंत्र हैं > तहां यह उक्त अर्थके प्रकाश करनेवाले दो मंत्र प्रमाण होते हैं ५। ५७॥

६॥ हे सौम्य !। यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्ये। इत्यादि इस ब्राह्मवाक्यके साथ प्रथम (पहिले) मन्त्र की योजना करते हैं। तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। <तीन मात्रा मृत्युगोचर परस्पर सम्बन्धवाली हैं > अर्थात् तीन हैं संख्या जिनकी ऐसी जो अकार उकार मकार नामवाली ॐकार की तीनमात्रा हैं सो मृत्युकरके आक्रान्त (व्याप्त) अर्थात् मृत्युका विषयही हैं। अरु परस्पर सम्बन्धवाली हैं। सो तीन मात्रा विशेष करके एकएक विषय विषेही योजना न किया हो ऐसा नहीं, किन्तु विशेषकर के एकही ध्यानकालविषे त्यागकरी भई, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप स्थानके अभिमानी जे वैश्वानरादिकनसों अभिन्न विश्वादिक पुरुषों के अर्थात् [वैश्वानरसे अभिन्न विश्व जाग्रत्का अभिमानी तिसका स्थूलशरीररूप स्थान। अरु हिरण्यगर्भ से अभिन्न तैजस स्वप्नका अभिमानी लिंग शरीररूप स्थान। अरु अव्यक्तसे अभिन्न प्राज्ञ सुषुप्तिका अभिमानी कारण शरीर रूपस्थान] अकार उकार मकाररूप मात्रा से, तादात्म्य (एकरूपता) करके ध्यान रूपजो। क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पतेज्ञः। < बाहर भीतर अरु मध्यकी क्रियाके भली प्रकार योजना किये हुये ज्ञाता कम्पमान होते नहीं >, बाहर भीतर अरु मध्य की क्रिया है तिनके सम्यक् प्रकार ध्यानके कालविषे योजना कियेहुये जब

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं ससामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति ७ । ५९ ॥

इति प्रश्नोपनिषदि पंचमप्रश्नः ५ ॥

तिसके साथ अकारादि तीनों मात्रा योजना कियाहोय तब ॐकारके कहे हुये विभागका जाननेवाला जो योगी है सो चलायमान अर्थात् विक्षेपको प्राप्तहोता नहीं, किन्तु स्वरूप में स्थिरही रहता है । अर्थात् (जो चलायमान होताहै सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति बिषे होताहै सो सर्व ॐकारही है ऐसा जानलिया तब चित्त चंचलताछोड़ स्वरूपमें निश्चलहोताहै) जिस करके उस साधक पुरुषने स्थूलादि स्थान सहित जाग्रत् स्वप्न अरु सुषुप्ति अरु विश्वादि जो तिनके अभिमानी पुरुषहैं, सो अकारादि तीन मात्रामय ॐकाररूपकरके देखे है, एतदर्थ इसप्रकार जाननेवाले योगीका चलायमान होना सम्भवे नहीं ६ । ५८ ॥

७ ॥ हे सौम्य ! जिसकरके सो ऐसा पूर्वोक्त विद्वान् सर्वका आत्मा ॐकारमयहै तिसहेतुसे किसकारणकरके उसका चलायमानहोनाहोय, किन्तु अपनेसे पृथक्वस्तु के अभावसे किसीकरके भी चलना (विक्षेप) बने नहीं । अथवा अपने से अपृथक् निश्चयभये जगत् बिषे किस बिषयके अर्थ विक्षेपवान् होगा, किंतु किसीबिषे भी नहीं । इस अर्थके बोधक प्रथम मंत्रकहके अब सर्व अर्थके संग्रहरूप अर्थवाला द्वितीय मन्त्र कहते हैं ॥ हे सौम्य ! । ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । (सो ऋग्वेदसे इसको यजुर्वेदसे अन्तरिक्षको (अरु) जिसको विद्वान् जानते हैं (ऐसे ब्रह्मलोकको) सामवेदसे (पावताहै); अर्थात् सो विद्वान् (जो एकमात्रारूप) ॐकारका उपासक है ऋग्वेदसे इस मनुष्यलोक को पावता है । अरु (जो दो मात्रा

वा दूसरी मात्रा रूप ॐकारका उपासक है सो) यजुर्वेद करके अन्तरिक्षगत चन्द्रलोक को पावता है। अरु जिसको विद्वान् पुरुष जानते हैं अरु अविद्वान् नहीं जानते ऐसा जो सत्यनाम वाला ब्रह्मलोक है तिसको (तीन मात्रा का वा तीसरी मात्रा का उपासक) सामवेद करके प्राप्तहोता है। इसप्रकार विद्वान् उपासक अपरब्रह्मरूप तीन प्रकार के लोक को (समात्रिक) ॐकाररूप आलम्बन (साधन) से पावता है। अरु ऽ। तमोंकारेणैवायतनेनान्वेतिविद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति। (जो शान्त अजर अमर अभय है तिसपर (ब्रह्म) को ॐकाररूप ध्यान सेही पावता है) ऽ अर्थात् जो अक्षर सत्यपुरुष संज्ञक शान्त विमुक्त अरु जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिआदि भेदरूप सर्व प्रपंच से रहित है। अरु (जब अवस्था त्रयरूप सर्व प्रपंच से रहित है) इसही करके जरा अरु मृत्युकरके रहित है। अरु जिसकरके जराआदि विकारों से रहित है, इसही से अभय है। अरु जब अभय है तबही सर्व से अधिक है, ऐसा जो (त्रिमात्रिक ॐकारका लक्ष्यरूप) परब्रह्महै तिसको भी (प्रतिमावत्प्रतीक रूप त्रिमात्रिक) ॐकारकी (उपासना रूप) आलम्बन (साधन) सेही प्राप्त होताहै। । इति । यहां जो ,इति, शब्द है सो वाणी की परिसमाप्त्यर्थ है इति सिद्धम् ७। ५६॥

इति प्रश्नोपनिषद्गत पञ्चम प्रश्न

भाषाटीका समाप्त ५॥

हरिः ॐतत्सद्ब्रह्म॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतषष्ठप्रश्नः ॥

अथ हैनंसुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ भगवन् हिरण्य नाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत। षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथंते नावक्ष्यमिति समूलो वा एषपरिशुष्यतियोऽनृतमभिवदति तस्मा न्नार्हाम्यनृतं वक्तुं सतूष्णीं रथमारुह्यप्रवव्राज तं त्वापृच्छामिक्वासौपुरुष इति १ । ६० ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतषष्ठप्रश्नभाषा टीका प्रारभ्यते ॥

१ । हे सौम्य ! < सुषुप्ति कालविषे विज्ञान रूप जीवात्मा सहित सर्व कार्य कारणात्मक जगत् अक्षररूप परब्रह्म विषे लय होताहै > इसप्रकार पूर्व चतुर्थ प्रश्नविषे कहि आये हैं। तिसकथनरूप प्रमाण की सामर्थ्य से प्रलयविषे भी तिसही अक्षर बिषे यह सर्वजगत् लय होता है। अरु जिसकरके कार्य्य का अकारण बिषे लय संभवता नहीं अर्थात् जो जिसका कार्य्य है सो परिणाम में उसही अपने कारणमें लयहोताहै अन्य में नहीं अरु । आत्मनः एषप्राणो जायते । यह इसही उपनिषद्के तृतीय प्रश्नके तीसरीश्रुति से कहाहै। एतदर्थ जिसब्रह्म विषे यह जगत् लय होताहै तिसही ब्रह्मसे जगत्का उपजना सिद्धहोताहै ॥ अरु जगत्का जो मूल (कारण) है तिसके सम्यक्ज्ञानसे परम मुक्ति होतीहै। अर्थात् [यद्यपि अद्वैत आत्माके सम्यक् ज्ञानहुयेही मुक्तिहोतीहै, कारणकेज्ञानलेनहीं, तथापि तिसआत्माको कारणत्व होनेसे तिससे भिन्नकार्य्य का अभाव है, क्योंकि कारणसे भिन्न कार्य्यकीसत्ता होतीनहीं, तातेआत्माके अद्वैतपनेका ज्ञान सिद्ध

होताहै, एतदर्थ तिसजगत्केमूल कारण आत्माके सम्यक्ज्ञानसे (चतुर्धा मुक्तिसे भिन्न) परममुक्ति होतीहै "। आत्मा वा इदमेव एवाग्रआसीत् "। "। सएतमेव पुरुषब्रह्म ततमपश्यत्"। "प्रज्ञानंब्रह्म"। "। स एतेन प्रज्ञानेनात्मनाअमृतःसमभवत् "। "। सदेव सौम्येदमग्र आसीत्"। "आचार्य्यवान् पुरुषोवेद"। "अथसमत्स्ये"। "तमेवैकंजानथ"। "अमृतस्यैषसेतुः"। "अहंब्रह्मास्मीति"। "तस्मात्तत्सर्वमभवत् "। ॥ (यहजगत् प्रथम निश्चयकरके एकहीआत्माथा) (सोइसही पुरुषको परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखताभया) । (प्रज्ञान ब्रह्महै) । (सो इस प्रज्ञानरूपसे अमरहोताभया) । (हेसौम्य!यहआगे एकअद्वैत सत्हीथा) इसप्रकार आरम्भकरके । (आचार्य्यवान्पुरुषजानताहै) (तिसही एककोजानो) (यहअमृतकासेतुहै) । (मैंब्रह्महौं) । (तातेसो सर्वरूप होताभया) ॥ इत्यादि अनेक श्रुतियों के वाक्यों से निश्चय किया है] यहसर्व उपनिषदों का निश्चितार्थ है । अरु इसही उपनिषद् के चतुर्थप्रश्नविषे "। स सर्वज्ञः सर्व्वोभवतीति "। (सो सर्वज्ञ सर्वरूप होताहै) । इसप्रकार कहा है । ताते सो अक्षर ब्रह्मरूप सत्पुरुष नामवाला जो (मुमुक्षुओं करके) जानने योग्य वस्तु हैं सोकहाहै । इसप्रकार पूछनेयोग्यहै । अरुतिससत्पुरुषको शरीरके भीतर स्थितकहाहै तिसकरके, प्रत्यगात्माके सम्यक् ज्ञानार्थ इसषष्ठप्रश्नका आरम्भकरते हैं। अरुयहांसुकेशा नामवाले शिष्यने पूर्व व्यतीतभये अर्थका पुनः प्रश्नरूप कथन कियाहै, सो ज्ञानकी दुर्लभताकी प्रसिद्धिहोनेसे तिसकीप्राप्त्यर्थ पुरुषार्थ विशेषके उत्पादनार्थ है ॥ अब (["। गताः कलाः पंचदशप्रतिष्ठा देवाश्चसर्वेप्रतिदेवतासु । कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्ययेसर्वएकीभवन्ति "। (पंचदश कला अपनेकारण भावको प्राप्तभई कर्म अरु विज्ञानमय (जीवात्मा) सोपरअव्यय (अविनाशी) अक्षर ब्रह्म विषे एक (अभेद) होतेहैं) इसप्रकार मुंडक उपनिषद्केतृतीय मुंडकके दूसरे खंडके सातवें मन्त्रसे कहिके ("। यथानद्यःस्यन्दमानाःसमुद्रेस्तंगच्छन्ति नामरूपेविहाय

तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तःपरात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ” अब ऽ
<जैसे नदियां सर्वओरसे बहतीहुई अपनेकारण समुद्रविषे जाय
अपने नामरूपको छोड़ (समुद्रही होती हैं) । तैसे प्रत्यगात्मा
को सम्यक् अनुभवकरनेवाला विद्वान् (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य) प-
रात्पर परम दिव्य अक्षर पुरुषको प्राप्तहोताहै > इस मुंडककेही
उक्त खंडके आठवें मन्त्र करके दृष्टान्तके कथनप्रमाणसे परब्रह्म
की प्राप्ति कही है । ताते इन उक्त दोनों मन्त्रोंका अर्थ सविस्तर
कहनेके अर्थ इस षष्ठ प्रश्नका आरम्भकरते हैं]> ॥ हे सौम्य! सत्य
कामामुनिके प्रश्नके निर्धारहोनेके ऽ । अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः
पप्रच्छ । < पश्चात् इसको भारद्वाजका पुत्र सुकेशा प्रश्नकरता
भया > ऽ अर्थात् सत्यकामाके प्रश्नके अनन्तर इस पिप्पलाद
मुनिरूप आचार्यसे भारद्वाजमुनिका पुत्र सुकेशानामवालामुनि
प्रश्नकरताभया ॥ सुकेशा उवाच ॥ ऽ । भगवन् हिरण्यनाभः कौ-
सल्योराजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । < हे पूजाके योग्य!
कौसलदेशका हिरण्यनाभ राजपुत्र मेरे समीपआय इसप्रश्नको
पूछताभया > ऽ हे सर्व संशयके नाशकर्ता! हे भगवन्! एकसमय,
कौसलदेशमें उत्पन्नभया ऐसा जोहिरण्यनाभ नामवाला क्षत्रि-
यजातीय प्रख्यात राजपुत्र मेरेसमीपआय इसकथनकरनेके प्रश्न
को पूछताभया कि ऽ । षोडशकलं भारद्वाज पुरुषंवेत्थ । < हेभार-
द्वाज! षोड़शकलावाले पुरुषको जानताहै > ऽ हे भारद्वाज! सोलह
संज्ञाहैं जिनकी ऐसी जो कलाहैं सो, शरीरविषे अवयवोंवत्,
जिस आत्मरूप चैतन्य पुरुषविषे अविद्या करके अध्यारोपमात्रहै,
एतदर्थ इस चैतन्य पुरुषको सोलहकलावाला कहते हैं तिससो-
लह कलावाले पुरुषको तू जानता है । हे भगवन्! इसप्रकार जब
उसने प्रश्नकिया तबांतमहं कुमारमब्रुवन् नाहमिमंवेद । < तिस
कुमारको इसको मैं जानता नहीं ऐसे कहताभया > अर्थात् ऽ
तिस प्रश्नकर्त्ता राजकुमार को जिसके विज्ञानार्थ तेरा प्रश्न है
तिस पुरुषको मैं जानता नहीं इसप्रकार मैं कहताभया । परन्तु

उक्तप्रकारका कहनेवाला जो मैं तिस मेरे वाक्य में भी यह भार-द्वाजमुनि कहता है कि मैं उस सोलहकलावाले पुरुष को नहीं जानता सो यह आप जानता होयके नहीं जानता कहता है वा न जानके, इसप्रकार, अज्ञानके संशयका सम्भव उस कुमारविषे विचार तिस राजपुत्रको मैं ,प्रश्नकिये पुरुषके विषयमें, अपने अज्ञानका कारण कहता भया कि हे राजकुमार! ऽ। यद्यहमिमम-वेदिषं कथं तेनावक्ष्यमिति । ऽ जब मैं इसको जानता होउँ तब तेरे अर्थ कैसे न कहूं ? ऽ जब मैं तुम्हकरके प्रश्नकिये पुरुषको जानताहोउँ तो तुम्हसरीखे उत्तमगुण सम्पन्न शिष्यके अर्थ कैसे न कहूं, किन्तु कहताही । हे भगवन्! इसप्रकार कहके भी मैं अपने वाक्य में उसका अविश्वास जान विश्वास करावने के अर्थ पुनः मैंने कहा कि हे राजकुमार! ऽ। समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति । ऽ जो अनृत कहताहै यह समूल सूखजाता है ; ऽ जो पुरुष ज्ञानीहुआ भी अपनेआपके विषयमें 'मैं अज्ञानी हौं, इसप्रकारका आरोप करता हुआ अन्यथा भये अर्थरूप अनर्थ (झूठ) को कहता है सो अपने धर्मकर्मरूप मूल सहित सूख जाताहै अर्थात् इसलोक परलोक से भ्रष्टहोता है ऽ। तस्मान्नार्हाम्यनृतंवक्तुं । ऽ ताते अनृत कहने को योग्य नहीं ; ऽ एतदर्थ इसप्रकार जब मैं जानताहौं तब मैं मूढ़ पुरुषोंवत् झूठ कहनेको योग्य नहीं हौं। हे भगवन्! इसप्रकार जब मैं कहा तब ऽ। स तूष्णींरथमारुह्यप्रवव्राज । ऽ सो चुपहुआ रथमें बैठजाताभया ; ऽ मेरे कहे वाक्यमें विश्वासको प्राप्तहोय सो राजकुमार प्रश्न से उपरामहोय रथमें बैठ जहांसों आयाथा तहांको जाताभया ताते हे भगवन्! ऽ। तंत्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति १ । ऽ तिसको तुम्हारेताईं पूछताहौं यहपुरुष कहांहै ; ऽ न्यायमें शरणको प्राप्त भये अधिकारी शिष्यके अर्थ ज्ञाता गुरुकरके विद्याकहनेको योग्य हीहै । अरु सर्व अवस्थाविषे झूठ कदापि कहने के योग्य नहीं । अरु जानने के योग्य होने से बाणवत् मेरे हृदयविषे स्थित, ऽ अ।

तस्मैसहोवाच । इहैवान्तःशरीरे सौम्यसपुरुषो यस्मिन्नेताःषोडशकलाः प्रभवन्तीति २ । ६१ ॥

र्थात् [यावत् जाननेको इच्छितवस्तुको जानते नहीं तावत्पर्यन्त सो वस्तु हृदयबिषे वाणवत् भासे है] ऽ तिस पुरुषको मैं तुम्हारे प्रति पूछताहौं कि यह जो जानने योग्य पुरुषहै, कि जिसके जाननेके अर्थ राजपुत्रका मुझसे प्रश्नथा, सो कहांवर्त्तताहै १ । ६० ॥

२ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब सुकेशा मुनिने अपने वृत्तान्त कहने पूर्वक प्रश्नकिया तब ऽ । तस्मैसहोवाच । < तिसके अर्थ सो कहतेभये > ऽ तिस प्रश्नकर्ता सुकेशामुनिके अर्थ सो सर्वज्ञ पिप्पलाद मुनीश्वर कहतेभये ऽ । सौम्य!यस्मिन्नेताःषोडशकलाः प्रभवन्तीति । < हे सौम्य ! जिसविषे यह सोलह कला उपजती हैं > ऽ कि हे प्रियदर्शन ! जिसपुरुषविषे यह अग्रिम कहनेकी प्राणादि सोलह कला उत्पन्न होती हैं, एतदर्थ सोलह कला रूप उपाधियों से जो पुरुष निष्कल (कला रहित) है सो निष्कल हुआ भी अविद्या दोष करके कलावालेवत् देखते हैं, ऐसा जो शुद्धचैतन्य, पुरुष है ऽ । स पुरुषो इहैवान्तः शरीरे । < सो पुरुष इसही शरीरके अन्तर है >ऽ सो पुरुष कि जिसके अर्थ तेरा प्रश्न है इसही शरीर बिषे < कि जिसबिषे स्थित हुआ तू प्रश्न करता है > एकहृदय कमल है तद्गत जो < दहर नामवाला > अन्तराकाश है तिस आकाश के मध्य < मुमुक्षुओं करके > जानने योग्य है । अन्य देशबिषे कहीं भी नहीं २ । ६१ ॥

३ । हे सौम्य ! < ब्रह्मविद्या आदि जिसविद्या को कहते हैं तिस > विद्या से तिस , निष्कल, पुरुष की, अविद्या दोषसे आरोपित जेकला तिनके अध्यारोप के अपवादके होनेसे सो पुरुष केवल अनुभव करनेके योग्यहै, एतदर्थ कलाओंकी उत्पत्ति उससों कही है । अरु अत्यन्त भेदरहित अद्वैत शुद्धतत्त्व बिषे अध्यारोप किये विना प्राणादि कलाका प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादनादिक

सईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भवि-
ष्यामिकस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ३।६२ ॥

व्यवहार करने को समर्थ नहीं, एतदर्थ इनकलाओं के उत्पत्ति स्थिति अरु लय का अविद्या के आधीन आरोप करतेहैं अरु जिस करके यह कला चैतन्यसे अभेदकरकेही उत्पन्नहुई स्थितहुई लयहुई सर्वदा देखते हैं। याही से कोईएक, क्षणिक विज्ञान वादी, मूर्ख भ्रमी पुरुष ' अग्निके संयोगसे घृतवत् चैतन्य (विज्ञान) ही घटादि आकार से क्षणक्षण विषे उपजे हैं, अरु नाश होताहै, इस प्रकार मानते हैं अरु शून्यवादी जो पुरुष हैं तिनको सुषुप्तिआदि अवस्थाविषे तिनरूपादि विषयके अरुज्ञानरूप से चैतन्यके अभावहुये सर्व शून्यही होता है, ऐसा भ्रम होता है। अरु दूसरे न्यायशास्त्र के ज्ञाता नैयायिक पुरुषजो हैं सो चेतना के करनेवाला नित्य आत्माका घटादिकों को विषय करने वाला चैतन्य (ज्ञानगुण) अनित्य उपजता है अरु नाशहोता है, इसप्रकार कहते हैं, अरुअन्यजे चारवाक मतके पुरुष हैं सो ऐसा कहते हैं कि चैतन्य जिसको कहते हैं सो देहाकार से मिले हुयेजे पृथिव्यादि वायुपर्यन्त चारभूत हैं तिनका धर्म (संयोगी फल) है। हे सौम्य! इनकहेहुये सर्व पुरुषों को प्राणादिकला अरु चैतन्यके अभेदकी भ्रान्ति है परन्तु श्रुतिका सिद्धान्त यहहै जो जन्म मरण रूपधर्मसेरहित चैतन्यरूप आत्माही नामरूपादि उपाधियों के धर्मोंसे नानाभावकरके अरु कार्यभावकरके प्रतीत होताहै ॥ " सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म " (सत्यज्ञानअनन्तरूपब्रह्महै) अरु " प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म " (प्रज्ञान आनन्दरूप ब्रह्महै) अरु " विज्ञानघनएव " (विज्ञानघनहीहै) इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे अरु तैसे हुये अर्थात् क्षणिक विज्ञानवादी आदिकोंके कहेप्रमाण हुये, श्रुतिकेसिद्धान्तसे विरोध आवताहै एतदर्थ वोक्षणिकविज्ञान वादी आदिकोंके मत सर्वथा त्यागनेहीयोग्यहैं ॥ [अपज्ञानकाल

बिषे विषयोंका सद्भावहीहोय इस नियमका अभावहै ताते। अरु विषयकालबिषे ज्ञानके सद्भावका नियमहै ताते, तिसज्ञान अरु विषयकाभेदहै । इसप्रकार क्षणिकविज्ञानवादी के पक्षको खंडन करतेहुये,अरु अव्यभिचारतासेही ज्ञानकी नित्यताको साधतेहुये नैयायिक आदिकों के मतको खंडन करते हैं। यहांयह अर्थ है कि घटज्ञानके कालबिषेपटके अभावका संभवहै तिसकरके विषयोंको ज्ञानसे व्यभिचारित्वपनाहै । अरुज्ञानकोतो विषयकाल बिषे अवश्यहोने के नियम से अव्यभिचारित्वपना सिद्धहीहै ॥ अरु पट ज्ञानके काल बिषे घटका ज्ञानभीनहीं है, तातेघटकेज्ञानकोभी पट रूपविषयसे व्यभिचारित्वपनाहै ॥ इसशङ्काकोचित्तबिषेल्याय के विषयोंका स्वरूपसेही व्यभिचारित्वपना कहाहै । अरु ज्ञान का विषय विशिष्टतारूपमात्रसेही व्यभिचारहै स्वरूपसे नहीं यह भेद है] ऽ स्वरूपसे अव्यभिचारी पदार्थोंबिषे चैतन्यके अव्यभिचार होने से जैसे २ जो जो पदार्थ जानतेहैं,तैसेतैसे जाननेयोग्यहोने सेही तिस २ पदार्थ के चैतन्यका अव्यभिचारपनाहीहै ॥ शङ्का ॥ कोईएकवस्तु ज्ञानतेनहीं परन्तु होतीहै । अर्थात् [उत्पन्नहोय के शीघ्रही नाशहोनहार आदिकवस्तु, अरु गिरिगुहान्तर्गतवस्तु को अज्ञात होनेकर के ज्ञानका भी ज्ञेयरूप विषयसे व्यभिचारप्रसिद्धहै]॥समाधान॥ हे सौम्य! यहवादीका शङ्कारूप कथनकैसा है कि, जैसे कोईकहे कि रूपसंज्ञक विषयको देखतेतोनहीं तथापि चक्षुहै, तद्वत्, अघटित है ऽ अर्थात् [वादी ने कहा कि कोइक वस्तु जानते नहीं परन्तु होतीहै, सोवनेनहीं क्योंकि तिसवस्तुके अज्ञानके होनेसे तिसके अस्तित्वभावकी असिद्धिहै, अर्थात् जिस वस्तुका ज्ञाननहीं अरु सो वस्तु है, ऐसा वस्तु का अस्तित्वभाव ज्ञानविना कदापि सिद्धहोतानहीं, ताते तैसा अज्ञातहुआ पदार्थ असिद्धही है] ऽ एतदर्थ घटके ज्ञानकालबिषे कदाचित् पटके अभावसे ज्ञेय (विषय) रूप पट ज्ञानसे व्यभिचार को पावताहै परन्तु ज्ञान जो है सो कदाचित् भी व्यभिचारको पावता नहीं

क्योंकि एक ज्ञेय (विषय) के अभावहुये भी अन्यज्ञेय (विषय) विषे ज्ञानका स्वरूप करके सद्भावहै । अरु सुषुप्तिविषे ज्ञानके न होनेसे ज्ञेय विषय कुछ होताहै, ऐसी प्रतीति किसी को भी होती नहीं, एतदर्थ भी 'ज्ञान, व्यभिचारको पावता नहीं ॥ अरु जो कहै कि सुषुप्ति बिषे अदर्शनहोने से ज्ञानका भी अभावहै तातेज्ञेय के व्यभिचारवत् ज्ञानके स्वरूपका भी व्यभिचारहै । सो ऽ [क्या तब सुषुप्तिविषे तू ज्ञेयके अभावसे ज्ञानका अभाव साधता है वा ज्ञानके अदर्शन होनेसे ज्ञानका अभाव साधता है ? तिन दोनों पक्षों में, जब सुषुप्तिरूप ज्ञेयको अङ्गीकार किया तब ज्ञानके अदर्शनकी असिद्धिहै ,क्योंकि ज्ञानके अभावसे सुषुप्तिरूप ज्ञेय सिद्ध होता नहीं, ताते दूसरा पक्ष बनता नहीं यह आगे कहेंगे ? ऽ अरु जो तू प्रथम पक्षको कहेगा कि ज्ञेयके अभाव से ज्ञानका अभाव है, तो भी ज्ञेयको प्रकाश्यरूप होनेसे उसके अभावभये तिसके प्रकाशकरूप ज्ञानका अभावहै, इसप्रकार मानताहै, किंवा ज्ञान अरु ज्ञेय इन दोनों की एकता का अभावरूप ज्ञानका अभाव है, ऐसा मानताहै, तहां इनदोनों पक्षों में भी ज्ञान अरु ज्ञेयका परस्पर में व्यभिचारके होनेसे प्रथमपक्ष बने नहीं । अरु जो कहे कि प्रकाश्य के ज्ञानरूप एकही सामर्थ्यवाले प्रकाश का प्रकाश्य के अभावहुये अभाव कहते हैं, तहां प्रकाश को प्रत्यक्ष सिद्ध होनेसे सो भी बने नहीं, क्योंकि अन्धकार विषे प्रकाश्यरूप की अप्रतीति के हुये तिसके ज्ञानबिषे समर्थ चक्षुरूप प्रकाश के अभाव की कल्पना करनी भी अशक्यहै ताते, प्रथमपक्ष बने नहीं । अरु सुषुप्तिबिषे जे ज्ञेयका अभाव सो अभावरूपही ज्ञेयहै तिस ज्ञेयके विद्यमान होते, ज्ञान अरु ज्ञेय इन दोनों के तादात्म्यमय एकता के अभावरूप ज्ञानका अभावहै यह दूसरापक्षभी बनता नहीं, इस अभिप्रायसे सिद्धान्ती कहताहै] ऽ बने नहीं । क्योंकि ज्ञेयके प्रकाशक ज्ञानको, सूर्यादिकों के प्रकाशवत् ज्ञेयका प्रकाशकत्व है । अरु जैसे अपने करके प्रकाशने योग्य जे घटादि प्रकाश्य तिन

के अभाव भये सूर्यादिकों के प्रकाश के अभावका असंभव है तद्वत्, सुषुप्तिबिषे ज्ञानके अभावका असंभवहै । अरु जैसे अन्धकार बिषे चक्षुसे रूपविषयकी अप्रतीति के होनेसे, क्षणिक विज्ञानवादियों के, चक्षुके अभावकी कल्पनाकरने को भी शक्य नहीं है,तैसेही सुषुप्तिबिषे ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानके अभावकी कल्पनाकरने को अशक्यही है ॥ अरु जो ऽ[विज्ञानवादी के मतबिषे विज्ञान से भिन्न प्रकाशादिकों का अभाव है तातेप्रकाशरूप विज्ञानके परिणाम के अभाव होनेसे प्रकाश्यरूप विज्ञान के परिणामके संभव करके व्यभिचारके स्थलका अभावहै ताते तहां सुषुप्तिबिषे ज्ञान अरु ज्ञेय के अभावका व्यभिचार नहीं है,. इस अभिप्रायसे वादी शङ्का करताहै]ऽ कहे कि क्षणिक विज्ञानवादी जो हैं, सो ज्ञेय के अभावभये ज्ञानका अभाव कल्पताही है, हे वादी ! जब ऐसेही है, तब ज्ञानके अभावका जो कल्पक (वृत्ति) सोई ज्ञेय तिस ज्ञेयके अभावका ज्ञान अंगीकार करते हैं वा नहीं, यह विज्ञानवादी सों पूछते हैं, सो तिसका उत्तर कहना योग्य है (हे सौम्य !) तिन कहेहुये दोनों पक्षोंमें प्रथम पक्षबिषे ज्ञानके अभावकी सिद्धिनहीं है, क्योंकि तिनही अभावके ज्ञानका सद्भाव है ताते इसप्रकार कहते हैं, जिस ज्ञेयके अभावके ज्ञान से तिस ज्ञानके अभावको कल्पता है, तिस ज्ञानका अभाव किस करके कल्पता है । किसी करके भी कल्पना करनेको शक्य नहीं ॥ अरु द्वितीय पक्ष भी बनेनहीं । क्योंकि तिस ज्ञेयके अभावरूपअज्ञान को भी ज्ञानके अभावके कल्पक होनेका असंभव है ताते । अरु अवश्य ज्ञेयरूप होनेसे तिसके अभावहुये तिनज्ञेयके अभावकी कल्पनाका असंभवहै ताते, ज्ञेयके अभाव के ज्ञानके अङ्गीकार का पक्षयुक्त नहीं ॥ अरु जो ऐसाकहे कि ज्ञानको ज्ञेयसे अभिन्न होनेकरके ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानका अभावहोवेगा, सो बनेनहीं । काहेतें कि अभावको भी ज्ञेयपने के अङ्गीकारते । (हे सौम्य !) जब विज्ञानवादियों करके अभाव भी ज्ञेय अरु नित्य अंगीकार करते हैं, तब

तिसज्ञेयसे अभिन्न ज्ञानभी नित्यरूपकल्पनाकियाहीहोगा, अरु तिस ज्ञानके अभावको ज्ञानरूप होने से अभावपना कहनेमात्र ही है। अरु परमार्थसें ज्ञानका अभावपना अरु अनित्यपना नहीं है। अरु नित्यरूप ज्ञानके नाममात्र अभाव के आरोप बिषे हमारी क्या हानि है कुछ भी नहीं॥ अरु जो ऐसाकहे कि अभाव ज्ञेयरूपहुआ भी ज्ञानसे भिन्न है, तब इस तेरे कहने से ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानका अभाव जो तेरे मतमें माना है सो सिद्धनहीं होगा। अरु जो ऐसा कहे कि ज्ञेयवस्तु ज्ञानसे भिन्न है, अरु ज्ञानजो है सोज्ञेयसे भिन्न नहीं, सो बने नहीं, क्योंकि शब्दमात्र के भेदकरके वास्तविक भेदका असंभवहै ताते। अरु जबज्ञेय अरु ज्ञानकी एकता अंगीकार करताहै, तब ज्ञेयज्ञानसे भिन्नहै अरुज्ञेय से भिन्नज्ञाननहीं, यह जोकथनहै सो वह्नि (अग्नि,अग्निसे भिन्न है अरु अग्निसे भिन्न वह्निनहीं, इसकथनवत् शब्दमात्रहीहै। एत-दर्थ हे वादी! ज्ञान जोहै सो ज्ञेयसेभिन्नहीसिद्धहोताहै। अरु ज्ञानको ज्ञेयसेभिन्नसिद्धहुये सुषुप्तिबिषे ज्ञेयकेअभावकेहोते ज्ञानके अभाव का असंभव सिद्ध भया॥ अरु जो ऐसाकहे कि सुषुप्तिबिषे ज्ञेय के अभावहुये ज्ञानका अदर्शन है ताते ज्ञानका अभावहै, सो भी बने नहीं, क्योंकि सुषुप्तिरूप ज्ञेयके ज्ञानका अंगीकारहै ताते वहां ज्ञानकाअदर्शन असिद्ध है। अरु जिसकरके विज्ञानवादीके मतबिषे सुषुप्तिमें भी विज्ञानका सद्भाव अंगीकार करते हैं एतदर्थ ज्ञानका अदर्शन सम्भवता नहीं॥ अरु जो कदापि ऐसाकहे कि सुषुप्ति बिषे भी ज्ञानको अपने आपकरकेही अपना ज्ञेयपना है, सो भी बने नहीं, क्योंकि अभावस्थलबिषे ज्ञान अरु ज्ञेयका भेद सिद्ध होता है ताते। अरु जिसकरके अभावरूप ज्ञेयको विषयकरने वाला जो ज्ञान तिसको अभावरूप ज्ञेयसे भिन्नहोने करके ज्ञेय अरु ज्ञानका भेद सिद्धहै ताते सो सिद्धभयाभेद 'मृतकके जि-लावनेवत्, पुनः विपरीत करनेको सैकड़ों विज्ञानवादियों से भी अशक्यहै॥ अरु जो विज्ञानवादी ऐसाकहे कि ज्ञानको ज्ञेयपना

ही है । तो सो भी अन्यज्ञानकरकेही ज्ञेय होवेगा । अरु सो ज्ञान भी अन्य ज्ञानकरके ज्ञेयहोवेगा, ऐसे तुम्हारे पक्ष बिषे अनवस्था दोष होगा, सो भी बने नहीं । क्योंकि सर्ववस्तुके समूह के विभागका सम्भवहै ताते । अरु जिस पक्षबिषे सर्ववस्तुका समूह अपनेसे भिन्न किसी भी ज्ञानका ज्ञेयहै, तिस पक्षबिषे उक्त दोष है । अरु ऐसे जब हम मानतेहोयँ तब हमारे पक्षबिषे अनवस्था दोष होय । अरु जिसकरके ऐसे ज्ञानको विषयकरनेवाला ज्ञान रूप तीसराभाग हमों करके नहीं मानते हैं, किन्तु तिस ज्ञेयसे भिन्न जो ज्ञान सो ज्ञानही है अरु ज्ञानसों भिन्न जो ज्ञेय सो ज्ञेय ही है । इसप्रकार दूसरा विभागही हमोंकरके मानते हैं । ताते हमारे पक्षबिषे अनवस्थादोष सम्भवता नहीं ॥ अरु जो विज्ञानवादी ऐसा कहै कि तुम्हारेमतबिषे जब ज्ञानरूप ब्रह्म आपही अपनेका विषय नहीं, तब ब्रह्मके सर्वज्ञपनेकी हानि होती है, सो दोष ऽ [अर्थात् जानने योग्य सर्ववस्तुके अज्ञानके होनेसेही सर्वज्ञताकी हानि होती है और प्रकारसे नहीं, अरु अन्यथा शशश्रृंग (खरगोशके सींग) आदि अत्यन्त असत्य पदार्थोंके अज्ञान से किसीके भी मतबिषे सर्वज्ञता नहीं होगी (अथवा सर्वज्ञता की हानि नहीं होगी) एतदर्थ हमारेमतबिषे तिस सर्वज्ञताकी हानि रूप दोषकीप्राप्तिनहीं, (क्योंकि ज्ञानस्वरूपका अपनाआप ज्ञेयत्व शशविषाणवत् है) किन्तु तिस विज्ञानवादी कोही उक्त दोषकी प्राप्तिहोतीहै । क्योंकि तिसविज्ञानवादीकरके ज्ञानकी अवश्यज्ञेयरूपताका अंगीकार है ताते आप ज्ञान करकेही अपना ज्ञेयपना मान्याहै । अरु तिस अपने करके अपने ज्ञेयपनेको "अभावरूप ज्ञेयको विषयकरनेवाले ज्ञानको अभावरूप ज्ञेयसे भिन्नहोनेकरके, ज्ञेय अरु ज्ञानका अन्यपना सिद्धहै" सो पूर्व्व के ग्रन्थभाग बिषे दूषितहोने से अन्य ज्ञेयपने के अंगीकारसे सर्व्वज्ञताका असम्भव है ताते इस अभिप्राय से सिद्धान्ती कहे है [ऽ भी तिस विज्ञान वादीकोही होहु । हमको तिस मायिक सर्व्वज्ञपने के खण्डन

बिषे क्या दोष है, कुछ भी नहीं। अरु विज्ञानवादी के मत बिषे 'ज्ञान' ज्ञेयरूप है, एतदर्थ ज्ञानके ज्ञेयपने के अंगीकार से दूसरा अनवस्थारूप दोष भी अवश्यही होगा॥ क्योंकि विज्ञानवादी के मतबिषे ज्ञानको आपसे अज्ञेय होने करके अनवस्थारूप दोष अनिवार्य्य है [यहां यह अर्थ है कि विज्ञानवादी के मतबिषे ज्ञानको आपकरकेही आपका ज्ञेयपना मान्या है, तिसके असम्भवको "ज्ञेय अरु ज्ञानका पृथक्पना सिद्धहै" इस उक्त पूर्व्व ग्रन्थके भाग बिषे कथन किया होनेसे, परिशेष ते ज्ञानको अन्य ज्ञानके ज्ञेयपने के होनेसे तिस ज्ञानका भी अन्यज्ञाताहै, तिसका भी अन्यज्ञाता है। इसप्रकार प्राप्तभया जो अनवस्था दोष सो निवारणकरने को अशक्यही है] अरु जो ऐसाकहै कि तुम्हारे मतबिषे भी यह अनवस्थादोष तुल्यही है ऽ[अर्थात् हे सिद्धान्तिन्! तुम्हारे मतबिषे भी ज्ञानको अज्ञेयपने के हुये तिसके व्यवहारकी असिद्धिहोवेगी। अरुअन्यज्ञानके ज्ञेयपने के हुये अनवस्था होवेगी। इसअभिप्राय से वादी शंका करताहै] ऽ सो बने नहीं ऽ[हमारे मतबिषे ज्ञानको स्वप्रकाश होने करके आपही करके अपने व्यवहारकी सिद्धिहै ताते अरु ज्ञानके भेद के अंगीकार से अनवस्थादोषकी प्राप्ति नहीं है, इसअभिप्रायसे सिद्धान्ती समाधानकरताहै] ऽ क्योंकि ज्ञानकी एकताका सम्भवहै ताते। अरु सर्व्व देशकाल अरु पुरुषआदि अवस्थावाला एकही ज्ञान, नाम रूपादि अनेक उपाधियों के भेदसे 'सूर्य्यादिकों के जलादि उपाधिगत प्रतिबिम्बवत्, अनेक प्रकारका भासताहै, एतदर्थ हमारे मतबिषे यह अनवस्था दोष नहीं है॥ अरु तैसेही चैतन्य के नित्यपने करके अधिष्ठानपना सिद्धहै तिसके हुये इस श्रुतिबिषे यह षोड़शकलाका आरोप करते हैं॥ ननु॥ इस श्रुतिसे मृत्तिका के पात्रबिषे बदरी (बैर) के फलवत् इसही शरीर के भीतर परिच्छिन्न पुरुष है सो नित्य कैसे सम्भवे, अर्थात् सम्भवता नहीं। सो कथनबने नहीं। क्योंकि सो प्राणादिकलाका कारण

है ताते । अरु जिसकरके शरीरमात्रकरके परिच्छिन्न प्राण को श्रद्धाआदिक कलाका कारणपना निश्चयकरने को शक्य नहीं है। एतदर्थ सो पुरुषही सर्व कलाका कारणहै । अरु जिसकरके सो सर्व कलाका कारणहै, ताते शरीर को कलाका कार्य होनेसे सो शरीर पुरुषकी कार्यकला तिसका कार्यरूप अपनी उत्पत्ति से पूर्व अविद्यमान आप शरीर सो अपनेबिषे अपने कारणके कारण पुरुषको मृत्तिकाके पात्रबिषे बदरीफलवत् परिच्छिन्न करनेको समर्थ होवेनहीं ॥ अरु जो कहे कि जैसे बीजका कार्य वृक्ष अरु तिसका कार्य आम्रादि फल, सो अपने कारणके कारण बीजको अपने भीतर करनेकरके परिच्छिन्न करता है । तैसे शरीर जो है सो अपने कारणके कारण पुरुषको भी अपने भीतर करनेकरके परिच्छिन्न करताहै । सो कथनबने नहीं । क्योंकि फलका कारण वृक्ष तिसकी उत्पत्तिका कारण जो बीज तिसबीजकी अरु फल के अन्तर्गत बीजकी व्यक्तिका भेद है तिस भेदकरके, अरु बीज सावयव होताहै ताते, अरु पुरुषकी व्यक्तिकी एकताहै ताते अरु पुरुषको निरवयवता है ताते, [फल अरु बीजकी व्यक्तिके भेदसे इस दृष्टान्तगत प्रथम हेतुको यहां वर्णन करते हैं] दृष्टान्तबिषे कारणरूप बीजसे अन्यहीबीज वृक्षके फलसे आवृत्तहै । अरु दार्ष्टान्तबिषे तो अपने कारणका कारणरूप सोई पुरुष शरीर के भीतरकिया सुनते हैं । [अब बीजको सावयवहोने से इस दृष्टान्तगत द्वितीय हेतुको वर्णन करते हैं । यहां यह रहस्यहै कि दृष्टान्त बिषे यद्यपि कारणरूप बीजकेही वृक्ष अरु तिसके फल अरु तिस फलके अन्तर्गत बीजरूपसे परिणामते तिन कारण अरु कार्यरूप बीजकी व्यक्तिभेदके होते भी एकताहै तथापि तिसका कारणरूप बीजको सावयव होनेसे वृक्षवत् फलके आकारसे परिणामको प्राप्तभये अवयवन से भिन्न जो अवयवहै, तिनकेही तिस फलके अन्तर्गत बीजरूप से परिणामते उन बीजों का भेदकरके फलका अरु तिसके अन्तर्गत बीजका आधार आधेयभाव होता

है। अरु यहां दार्ष्टान्तविषे तो पुरुषको निरवयव होनेसे शरीर का अरु पुरुषका आधाराधेयभाव बने नहीं] किंवा बीज अरु वृक्ष आदिकों को सावयवहोने से उनका परस्पर आधार अरु आधेयभाव बने है अरु पुरुष निरवयव है अरु कला अरु शरीर सावयव हैं, एतदर्थ तिनका परस्पर आधाराधेय भाव बने नहीं। अरु जब इस हेतु करके आकाशका भी आधारपना शरीर को अघटित है, तब आकाश के कारण पुरुष का आधारपना शरीर को अघटित होय इसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं। ताते हे वादी ! तैंने जो बीजका दृष्टान्त दिया सो दार्ष्टान्तके समान नहीं, किन्तु विषम है। अरु जो ऐसा कहे कि दृष्टान्तसे क्या प्रयोजन है प्रमाणरूप श्रुतिके वाक्य करके ही पुरुष को परिच्छिन्नपना होवेगा। सो भी बने नहीं। क्योंकि वाक्यको कारकताका अभाव है। अरु जिस करके श्रुतिका वचन वस्तु के अन्यथाकरनेबिषे समर्थ होतानहीं, किन्तु जैसा अर्थ होय तैसे अर्थके प्रकाशने बिषे समर्थ होताहै, ताते "इहैवान्तःशरीरे सौम्य सपुरुषो" (शरीर के भीतर सो पुरुष है) यह जो श्रुतिका वचन है सो अंडके भीतर आकाश है, इस वाक्य के अर्थवत् जानना। अरु ज्ञानका निमित्त होनेसे दर्शन श्रवण मनन अरु विज्ञान आदिक लिंगोंसे शरीरके भीतर परिच्छिन्नवत् प्रतीतहोता है। एतदर्थ। हे सौम्य! शरीरके भीतर सो पुरुषहै। इसप्रकार कहते हैं। अरु पुनः आकाशका कारण हुआ मृत्तिका के पात्रसे बदरीफलवत् शरीर करके परिच्छिन्न पुरुष है, इसप्रकार तो मूढ़ पुरुष भी मनसे भी कहने को इच्छा करता नहीं, तब प्रमाण भूत श्रुति कहने को न इच्छा करती होय, इसमें क्या कहना है ननु "यस्मिन्नेता षोडशकलाः प्रभवन्ति" (जिस विषे यहषोड़श कला उपजती हैं) इसप्रकार द्वितीय वाक्य बिषे पुरुषके विशेषणार्थ अध्यारोप कहा है, पुनः "सईक्षाञ्चक्रे" (सो ईक्षणको करताभया) इत्यादिरूप तृतीयवाक्यसे जो कलाकी उत्पत्तिका

कथन सुना है, सो यद्यपि अधिक अर्थ भी है, तथापि कलाकी उत्पत्ति किसक्रम से होती है, इस अर्थके जानने के प्रयोजन से "सईक्षाञ्चक्रे" < सो ईक्षणको करता भया > इत्यादिरूप यह अधिक अर्थ भी कहते हैं। अरु चेतन पूर्वकही प्राणादि कलारूप सृष्टिहोती है, इसअर्थ के जताव्रने को चेतन के आश्रित ईक्षण (अवलोकन) का कथन है। इसप्रकार शंकासमाधानरूप उपोद्घात [अर्थात्, अन्यके गृहसे गोरस के मांगनेवाली स्त्रीवत् प्रतिपादन करने के योग्य अर्थको मनमें रखके तिसके अर्थ अन्य अर्थका जो प्रतिपादन तिसको, उपोद्घात, कहते हैं] को कहके अब तृतीय वाक्यके अर्थको कहते हैं। हे सौम्य ! जो षोड़श कलावाला पुरुष भारद्वाज के पुत्रसुकेशा नाममुनिने पूछाथा कि "सईक्षाञ्चक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तोभविष्यामिकस्मिन् वा प्रतिष्ठते प्रतिष्ठास्यामीति" <सो किसकेनिकसेहुये मैं निकस्या होउंगा वा किसके स्थितहुये स्थितिको प्राप्तहोउंगा। ऐसे ईक्षण को करताहुआ > अर्थात् सो किस कर्त्ता विशेष के देहसे निकसे हुये मैं निकस्या होउंगा अरु किसके शरीरविषे स्थितहुयेमैंस्थिति को प्राप्त होउंगा, इसप्रकार प्राणादिक की सृष्टिके शरीरसे बाहर निकसने अरु शरीर के भीतर स्थित होने रूप फलको। अरु "प्राणाच्छ्रद्धा" <प्राणसे श्रद्धाको रचता भया > इत्यादिरूपक्रम आदिकको [यहांआदि शब्दसे "लोकोंविषे नामको रचताभया" यह आधार अरु आधेय का भेद ग्रहण करते हैं] विषयकरनेवाले ईक्षण (ज्ञान) को करता भया ॥ इति सिद्धम्। ३। ६२ ॥

४ ॥ हे सौम्य ! यहां यह सांख्यमत के अनुसारी वादियों की शंकाहै ॥ ननु ॥ आत्मा अकर्त्ता है अरु प्रधान (प्रकृति) कर्त्ता है, एतदर्थ पुरुषके भोग मोक्षमय अर्थरूप प्रयोजनको अंगीकार करके प्रधान जो है,सो महत्तत्त्वादिरूप आकारसे प्रवृत्त होताहै। तहां यह पुरुषको स्वतन्त्रता करके ईक्षणपूर्वक कर्त्तापने का जो वचन है सो अघाटितहै। किंवा सत्त्वादि गुणोंकी साम्यावस्था

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धा खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् । मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म्मलो का लोकेषु च नाम च ४ । ६३ ॥

(मिश्रअवस्था) मय प्रमाण प्रतिपादित प्रधानरूप सृष्टिकर्त्ताके होतसंते । अथवा परमाणु कारणवादी के मतानुसार ईश्वरेच्छा के अनुवर्त्ती सृष्टिका कारण परमाणुके होतसंते । आत्माको कर्त्ता- पनेके अंगीकार करने से [समीचीन नहीं क्योंकि] आत्माको एक अद्वैत होनेसे , जैसे कुलालरूप कर्त्ताके दंडचक्रादि सहकारी साधनवत्, सहकारी साधनका अभावहै, ताते दुःखादि अनर्थ के हेतु जे प्राणादिक संसार तिसके कर्त्तापने का असंभवहै एतदर्थ आत्माको सृष्टिके कर्त्तापने का जो वचनहै सो अघटितहै । अरु जिसकरके प्रत्यक्ष चेतनावान् बुद्धिपूर्वक कार्यका कर्त्ता पुरुष सो अपने अर्थ अनर्थको करता नहीं । एतदर्थ भी [ज्ञानस्वरूपआ- त्माको] अनर्थरूप संसारके कर्त्तापनेबिषे प्रवृत्तहोना संभवे नहीं । एतदर्थही पुरुषके भोग मोक्षमय प्रयोजनसे ईक्षणपूर्वकवत् निय- मित क्रमकरके वर्त्तमान अचेतन प्रधानबिषे 'जैसे राजाके सर्व अर्थके करनेवाले मंत्री आदिकोंबिषे ,यहराजाहै, इसआरोपवत् 'स ईक्षाञ्चक्रे' सोईक्षणको करताभया' इत्यादि रूप यह चेतनवत् आरोपहै । [अर्थात, 'जैसे' बालकबिषे पीतरंग करके युक्तारूप गुणके योगसे अग्निशब्दका प्रयोगहै तद्वत्, मुख्य ईक्षणके कर्त्ता बिषे विद्यमान जे नियमित क्रमकरके प्रवर्त्तमान होने रूप गुण तिसके योगसे 'स ईक्षाञ्चक्रे' 'सो ईक्षणको करताभया' ऐसा प्रधानबिषे गौणप्रयोगहै सोई उपचार अरु आरोप कहतेहैं] यह सांख्यवादियों का कथन है । सो बने नहीं ॥ क्योंकि आत्माको भोक्तापनेवत् कर्त्तापनेका सम्भव है ताते । अरु जैसे सांख्यवादी के मत बिषे चेतनमात्र अपरिणामी आत्मा का भी भोक्तापना मानते हैं, तिसप्रकार वेदवादी हमारे मतबिषेस्वरूप से अकर्त्ता

हुये आत्माको भी मायारूप उपाधिका किया श्रुति उक्तप्रमाण से जगत्का कर्त्तापना घटित है॥ अरु जो सांख्यवादी ऐसा कहै कि हमारे मतबिषे आत्माको अन्य महदादितत्त्व के स्वरूप की प्राप्ति रूप परिणाम से आत्मा की अनित्यता, अशुद्धता, अनेकता के निमित्त जे चेतनमात्र जे स्वरूपका विकार तिस विकार से पुरुष के स्वरूपबिषेही भोक्तापना तिसके होनेसे चेतनमात्र जो स्वरूप का विकार (अविवेक से परिणाम) सो दोषके अर्थ नहीं। अरु तुम्हारे वेदवादियों के मतबिषे आत्माको सृष्टिका कर्त्तापनाहोने से आत्माका अन्य तत्त्वके स्वरूपकी प्राप्तिरूप परिणामही होता हैं। एतदर्थ आत्मा को अनित्यता आदि सर्व्व दोषों की प्राप्ति होयगी ८[पूर्व्वरूपके परित्यागसे अन्यरूपकी जो प्राप्ति तिसको परिणाम कहते हैं सो परिणाम सजातीय अन्यरूपकी प्राप्ति के हुये, अथवा विजातीय अन्यरूप की प्राप्तिकेहुये अनित्यता आदि दोषोंको सम्पादन करताही है। एतदर्थ भोज्य (भोगनेयोग्य) के अविवेकरूप उपाधि का किया आत्माका भोक्तापना मानना योग्यहै। तिसकारण करके तिस भोज्यके अविवेकरूप उपाधिसे रचितपना सो तिस परिणाम के कर्त्तापने बिषे भी तुल्यही है। इस अभिप्रायसे भाष्यकाराचार्य्य मुख्य समाधानको कहते हैं यहां यह भावहै कि परमात्मारूप पुरुषको उपाधिकृत जो कर्त्ता-पनेका सम्भवहै ताते। अरु भ्रान्तिकरके इस परमात्मा से भिन्न अपूर्णकाम जीवों का सम्भव है ताते तिनके पुरुषार्थरूप प्रयो-जनका सृष्टापना तिसही प्रकार के चेतनरूप पुरुषको भी बनता है। एतदर्थ चेतनरूप अधिष्ठानवाले अचेतनरूप प्रधानको सो जीवों के भोग मोक्षमय पुरुषार्थरूप प्रयोजन का सृजतापना युक्त नहीं] ७ यह जो सांख्यवादियों का कथन सो बने नहीं। क्योंकि हमारे मत बिषे वास्तव में सहकारी साधन रहित अ-कर्त्ता आप्तकाम, एक अद्वैत आत्मा को भी अविद्यारूप सह-कारी के आश्रय नामरूपात्मक उपाधि अरु अनुपाधि के किये

भेदका अंगीकार है, तिसकरके आत्मा को नामरूप उपाधिका क्रियाही बन्ध मोक्ष अरु तिनके साधनरूप शास्त्रोक्त व्यवहारादिक विशेष मानते हैं। अरु परमार्थ दृष्टिसे अनुपाधिका क्रिया एकही अद्वितीय शुद्ध अरु सूक्ष्मबुद्धि से ग्रहण करने योग्य, अरु सर्व तर्कयुक्त बुद्धियोंका अविषय, अभय अरु शिव (कल्याण) रूपतत्त्व मानते हैं। तिसबिषे कर्त्तापना किंवा भोक्तापना अरु क्रिया अरु कारकका फल नहीं है। क्योंकि सर्व पदार्थोंको अद्वैत रूपता है ताते ॥ हे सौम्य ! सांख्यवादी तो वेदसे बाहर बोलने वाले होनेसे पुरुषबिषे अविद्यासे आरोपितही कर्त्तापना अरुक्रिया कारकका फल है, ऐसे कल्पिके पुनः तिससे भयको प्राप्त होते हुये परमार्थसेही पुरुषके भोक्तापनेको इच्छते हैं। अरु पुरुष से अन्यतत्त्व प्रधान को परमार्थ बस्तुरूपही कल्पतेहुये। अरु सांख्य वादियोंसे अन्य जे जैनादिक सो नैयायिकोंकरके शिक्षाको प्राप्त भई बुद्धिवालेहुये अपने मतके खंडनको पावते हैं। अरु तैसेही जैनादिकोंसे अन्य जे नैयायिक हैं सो सांख्यवादियोंकरके अपने मतके खंडनको प्राप्त होतेहैं ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार परस्पर विरुद्धअर्थकी कल्पनाकरनेसे ,मांसके अर्थी (श्वानशिकरादि) जीवों वत् परस्पर विरुद्ध क्रुद्धभये भेदरूप अर्थकेही देखनेवालेहुये तिस करके परमार्थ तत्त्वकी ओर से दूरसे दूरही खींचेगये हैं, ताते यथार्थ निरुपाधि शुद्ध आत्मतत्त्व के अबोधसे (दूरात् सुदूरे) दूरसे दूरही चलेजाते हैं। एतदर्थ जे मुमुक्षु पुरुष हैं सो उनके मतको अनादर पूर्वक त्यागके वेदान्त अर्थ के तत्त्वरूप एकताके ज्ञानको (श्रद्धा विश्वासपूर्वक) आदरदेनेवाले होयँ। इसप्रयोजनके लिये हमों (वेदवादियों) करके इनतर्क करनेवाले सांख्य वादियोंके मतबिषे कुछ दोषका दर्शन देखावते हैं, उनके मतको खंडन करनेके तात्पर्य से नहीं। तैसे यहां यह अर्थ शास्त्रान्तर बिषे कहाहै तथाच (विवदत्स्वेवनिक्षिप्य विरोधोद्भवकारणम्। तैः संरक्षितसद्बुद्धिःसुखंनिर्यातिवेदवित्) (वेदवेत्ता जो है, उनवा-

दियों से विवाद को करताहुआ चिदाकाशबिषे विरोधकी उत्पत्ति के कारण (परमार्थसे भेददर्शन) को छोड़के रक्षाको प्राप्त भई बुद्धिवाला हुआ । अर्थात् ऽ [भेददर्शनको परस्परवादियों से उक्तदोषकरके ग्रस्तहोनेसे अद्वैतही निर्दोषहै ऐसे निश्चयवालीबुद्धि करके युक्तहुआ] ऽ सर्वविकल्पसे शान्त होताहै, किंवा ऽ ['कुछ दोषकादर्शन देखावतेहैं' तिसहीको वर्णनकरतेहुये,कर्त्तापनेआदिकोंका आरोपितपनाही सांख्यवादियोंकरके भी कहनायोग्यहै ऐसा कहतेहैं] ऽ तुम्हारे सांख्यमतबिषे भोक्तापने अरुकर्त्तापनेरूपदोनों विकारोंकेविलक्षणपनेकाअसंभवहै, एतदर्थ पुरुषबिषे यहकर्त्तापने रूपजातिसे अन्य जातिरूप भोक्तापनेकरकेयुक्त विकारकौनहै, कि जिसकरके पुरुष भोक्ताहीहै कर्त्तानहीं । अरु प्रधान तो कर्त्ताहीहै भोक्तानहीं, इसप्रकार तुमकरके कल्पना करतेहौ सोकहो ॥ ननु, भोक्ता अरु चैतन्यमात्र स्वरूपही जोपुरुषहै, सो अपने चेतनरूपसे ही विकारको पावताहै, अन्यतत्त्वरूप परिणामसे नहीं । अरुप्रधान तो अन्यतत्त्वोंके परिणामसे विकारको पावता है, एतदर्थ सो प्रधान, अनेकरूप है अशुद्धहै अरुजड़है, ताते विलक्षण एकशुद्ध अरुचैतन्यरूप पुरुषहै । एतदर्थ उनदोनोंके भिन्न२धर्मरूप कर्त्तापने अरुभोक्तापनेकाभी विलक्षणपना है, यहसांख्यवादीने कहा ऽ [पुरुषका चैतन्यरूपसे परिणाम जो तैंनेकहा सो क्याआगन्तुक (उत्पत्तिनाशवाला) है, वा नहीं, तहां जो द्वितीयपक्ष है तो तिसपक्षबिषे कर्मजन्य कदाचित् होनेवाला भोग असिद्धहोयगा अरु प्रथम पक्षकहै तो तिस पक्षबिषे आगन्तुक विलक्षणतावाला होनेसे अनित्यता आदिककी प्राप्तिसे पुरुषकाप्रधानसे कुछविशेष नहींहै ॥ अरु जो ऐसाकहे कि भोगके अनन्तर पुरुषको पुनःअपने स्वरूपसेही स्थितहोनेसे अनित्यता आदि दोषनहीं है, तब प्रधानको भी प्रलयबिषे 'विशेषके अभावसे, अपने स्वरूप करकेही स्थितिके अंगीकार करने से तिसका विशेष न होगा । इसप्रकार अब सिद्धान्ति दूषण देते हैं ॥] ऽ तब तहां सिद्धान्तिकहे हैं यह

विशेष बनेनहीं, क्योंकि भोगकी उत्पत्तिसे पूर्वप्रधान अरु पुरुषके विकारकेभेदको कथनमात्रताही है ताते । ऽ [संक्षेपसे कथनकिये वाक्यका यहां वर्णन करते हैं] ऽ जबकेवल चैतन्यमात्र पुरुषको भोगकी उत्पत्तिकालबिषे भोक्तापना विशेषहोताहै, अरुजबभोगके निवृत्तभये पश्चात् तिस (भोक्तापनारूप) विशेषसेरहित पुरुष चैतन्यमात्रही होताहै, तबप्रधानभी तैसेही महत्तत्वादि आकार से परिणामको पाय पश्चात् प्रलयकालबिषे तिस (महत्तत्वादि) आकारको छोड़के प्रधानरूपसे स्थितहोताहै, इसरीतिसे चैतन्य रूपसे पुरुषके विकारकी कल्पनाबिषे भी विचार कियेहुये अर्थ से प्रधानका अरु पुरुषका कुछभी विशेषनहीं देखते हैं । एतदर्थ सांख्यवादियों करके प्रधान अरु पुरुषका विशेष (विलक्षणविकार) अर्थात् दोनोंका पृथक् २ विलक्षणरूप विकारहै, इसप्रकारवाणी मात्रसेही कहाजाताहै परन्तु सोसिद्धहोतानहीं॥ऽ[पुरुषकाचैतन्य रूपसे जो परिणामहै सो आगन्तुकअन्यरूपनहीं। इसप्रकार पूर्वोक्त दोनोंपक्षोंमें से द्वितीय पक्षको मानिके वादीकी शंकाहै]ऽ अरु जो ऐसाकहै कि भोगकाल बिषे भी 'भोगसे पूर्ववत्, चैतन्यमात्रहीपुरुषहै तिसका कदाचित् होनेवाला अन्यरूप नहीं, एतदर्थ प्रधान से विशेष (विलक्षण) है सो कहनाबने नहीं । क्योंकि जब इसप्रकार मानेंगे तब पुरुषको परमार्थ से भोग होयगा। अरु कर्मसे जन्य जो कदाचित् होनेवाला भोग सो असिद्ध होगा । ऽ[इसदोषके निवारणार्थ आगन्तुक परिणामको मानिके भोगकाल सम्बन्धी विकारमात्र भोगहै । सो भोग पुरुषकोही होताहै प्रधानको नहीं । इसप्रकार भोगके सद्भावरूप विशेषमात्र से वादीकी शंकाहै]ऽ अरु जो कहे भोगकाल बिषे चैतन्यमात्र पुरुषका विकार परमार्थरूपही है ति नकरके सो भोगकालसम्बन्धी विकारमात्र भोग पुरुषकोही होताहै,प्रधानको नहीं । एतदर्थ भोग के सद्भाव अरु असद्भावकरके प्रधान अरु पुरुष का विशेष (भेद) है ऽ[तहांभी क्या भोगकाल सम्बन्धी विकारमात्र भोगहै, किंवा

भोगकाल सम्बन्धी चैतन्यमात्रगत विकारवान्पना भोगहै, इस प्रकार विकल्प करिकै, प्रथम पक्षबिषे भोगकालमें प्रधानको भी सुखादिक आकार से बिकारवाला होनेसे भोग होयगा, इस प्रकार सिद्धान्ती कहतेहैं]ऽ सो बने नहीं, । क्योंकि इसप्रकारहोनेसे भोगकालबिषे प्रधानकोभी सुखादि आकारसे विकारवान् होनेसे भोक्तापनेकी प्राप्तिहोयगी ॥ ऽ[अब द्वितीयपक्षानुसार वादी की शङ्काहै] ऽ अरु ऐसा कहे कि चैतन्यमात्रकाही जो विकार सोई भोक्तापनाहै, तब उष्णतारूप विकारसे असाधारण धर्मवाले अर्थात् अग्निका असाधारण धर्म उष्णताहै, तिसधर्मवाले अग्नि आदिकोंके अभोक्तापने बिषे कारणका असंभवह्वोगा, अर्थात् अपने असाधारण विकारवाले अग्निआदिकोंको भी भोक्तापने की प्राप्तिहोगी ॥ अरु जो ऐसाकहे कि प्रधान अरु पुरुष इन दोनोंका एककाल बिषे भोक्तापना है सोभी बने नहीं । क्योंकि प्रधान को परमार्थरूपताका अभावहै ताते पुरुषके समान पारमार्थिक भोक्तापना असिद्ध है । अरु दोनोंको भोक्ताहुये परस्परके प्रकाशने बिषे दोनों प्रकाशनेके गुण-प्रधानभाव के असंभववत्,प्रधान अरु पुरुषका अन्योऽन्य गुणप्रधानभाव (शेषशेषीभाव) जो पूर्व अंगीकार किया है तिसका असंभवहोगा॥ अरु ऽ[ननु । भोग जो है सो सत्त्वगुण प्रधान चित्तरूप से परिणामको प्राप्तभई प्रकृति तिसकाही धर्म है । क्योंकि तिस चित्तको प्रकृति का विकार होनेका संभव है ताते । अरु पुरुषका धर्म नहीं क्योंकि सो पुरुष अविकारीहै ताते। अरु तिसपुरुषको भोगकेअभावका प्रसंगनहीं । क्योंकि तिसपुरुषको तिसप्रकारके चित्तके प्रतिबिम्बकेतत्त्व (निजरूपता) मात्रसे भोक्तापने का कथनहोता है, इसप्रकार वादी शंकाकरेहै] ऽ जो कहे कि भोगरूप धर्मवाले मुख्य सत्त्वगुणकरके युक्त जोचित्त तिसबिषे पुरुष के चेतनपने के प्रतिबिम्बरूप से निर्विकाररूपकोभी भोक्तापनाहै । सोभी बने नहीं । क्योंकि जब इस तेरेकहे प्रकारहै तब पुरुषको परमार्थसे सुखदुःखादि भोगरूप अ-

नर्थका अभावभया तब तिसकरके किसकी निवृत्तिके अर्थ पुरुषके मोक्षकासाधन शास्त्ररचते हैं, किन्तु किसीकेभी निवृत्त्यर्थ नहीं ॥ अरु जो ऐसाकहे कि परमार्थसे यद्यपि पुरुषको अनर्थका अभाव है, तथापि अविद्याकरके आत्मा बिषे आरोपितजे अनर्थ तिसकी निवृत्तिके अर्थ शास्त्रकी रचनाहै । तब, परमार्थसे पुरुषभोक्ताहीहै, कर्त्ता नहीं, अरु प्रधान कर्त्ताही है भोक्तानहीं, अरु परमार्थ करके पुरुषसे अन्य वस्तु सत्रूप प्रधानहै, इस प्रकारकी जो यह सांख्य मतवादियों की कल्पना सो, वेदबाह्य व्यर्थ अरु निष्प्रयोजन है । एतदर्थ मुमुक्षुओं करके आदरकरने योग्य नहीं ॥ अरु जो सांख्य वादी ऐसा कहे कि तुम वेदवादियोंके सर्वकी एकतारूप पक्ष बिषे भी निवारण करनेयोग्य बन्धकाअभाव है, ताते शास्त्रकी रचना आदिक मोक्षके साधनकी व्यर्थताहै । सोभी बनेनहीं, क्योंकि आ-त्माकी एकताके निश्चय अनुभववाले पुरुषसे विपरीत जे अज्ञानी पुरुष तिनके प्रतिदोषके सम्पादन करनेकाअभाव है ताते । अरु जिसकरके शास्त्रकर्त्ता आदिक अरु तिसके फलकेअर्थी पुरुषों बिषे शास्त्रकी रचना निष्प्रयोजनहै वा सप्रयोजनहै, इसप्रकारकी सो कल्पनाहोय । अरु आत्माकी एकता के निश्चय कियेहुये शास्त्रके कर्त्ताआदिक पुरुष, तिस आत्मासे भिन्न नहींहै । अरु तिनशास्त्र कर्त्ता आदिकोंके अभावहुये, यह शास्त्रकी रचना सप्रयोजनहै वा निष्प्रयोजन है, ऐसी यह कल्पना अघटितहै ऽ [अथवा तिसएक-ताके निश्चयके अभाव होनेसे निवारण करनेयोग्य जे बन्धनादिक तिनके सद्भावसे बन्धकी निवृत्तिके अर्थ यह शास्त्रकी कल्पनाअघ-टितनहीं? किंवा आत्माकी एकताके निश्चयहुये, तिस निश्चयका उत्पादक होनेसे तिसशास्त्रकी प्रयोजनसहित ताको अपने अनु-भवकरके सिद्धहोनेसे, तिसआत्माकी एकता के निश्चय अनुभव वाले पुरुषकरके यह शङ्का करनेकोभी शक्य नहीं, इस प्रकार अब कहतेहैं] ऽ अरु जिसकरके आत्माकी एकता को माननेवाले तुम्ह करके आत्मा की एकताके निश्चय किये हुये शास्त्ररूपप्रमाण का

प्रयोजन अंगीकार किया,एतदर्थ शास्त्रसप्रयोजनहै किंवा अप्रयोजनहै,यह शङ्का करनेकोभी अशक्यहै । अरु तिसआत्माकी एकता के निश्चय कियेहुये कल्पना का असम्भवहै । इस अर्थको "यत्रत्वस्यसर्व्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदित्यादि । < जहां (जिस विज्ञानदशा बिषे) तो इसपुरुषको सर्व्वआत्माही होताभया, तहां किसकरके किसको देखे, इत्यादि । > यह शास्त्र कहता है । अरु "यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति इत्यादि । < जहां द्वैतवत् होताहै तहां अन्य अन्यको देखता है > इत्यादि रूप यह बृहदारण्यक उपनिषद्रूप शास्त्र, अज्ञानी के बिषे शास्त्रकी रचना आदिकके सम्भवको कहता है । अरु । अविभक्ते विद्याऽविद्ये परापरे । < पर अरु अपररूप विद्या अरु अविद्या भिन्नरूप है > इत्यादि शास्त्रके आदि बिषेही विद्या अरुअविद्याका भेद सूचित किया है एतदर्थ वेदान्तशास्त्ररूप प्रमाण महाराजा की युक्तिरूप भुजा करके रक्षित इसआत्माकी अभेद एकतारूप देशबिषे तार्किकमत के वाद रूपशस्त्रकरके युक्त योद्धोंका प्रवेश कदापि होता नहीं ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार के कथन करके ब्रह्म को अविद्याकृत नाम रूपउपाधिकरके रचित अनेक शक्ति अरु साधनके किये अनेक पनेकेसद्भावसे,ब्रह्मको सृष्टिआदिकोंके कर्त्तापने बिषे <दंडचक्रादिवत्, साधनका अभावरूपदोष अरु अपने आप के अर्थ अनर्थ का कर्त्तापना आदि दोष जो पूर्व सांख्यमतवादीने कहाथा, तिसका खंडनभया जानना ॥ अरु सांख्यवादीने जो पूर्व दृष्टान्त कहाथा कि, जैसे, राजा के सर्वकार्यके कर्त्ता कार्याध्यक्ष बिषे उपचारसे, „यह राजा के कार्यका कर्त्ता राजा है,, इस प्रकार कहते हैं, सो दृष्टान्त यहां बने नहीं । क्योंकि । स ईक्षाञ्चक्रे । < सोईक्षणको करताभया >। इसप्रमाणरूप श्रुतिके मुख्य अर्थका बाध है ताते । अरु <यजमानपाषाणहै> इत्यादि स्थल बिषे जहां शब्द का मुख्यार्थ संभवे नहीं, तहांहीं शब्दकी गौणीवृत्तिकी कल्पना रूप उपचार देखा है । अरु यहां प्रधानके पक्षबिषे तो > अर्थात्

< [प्रधानके पक्षविषे केवल ईक्षणकी प्रतिपादक श्रुतिका असंभव रूप दोषहै, ऐसे नहीं, किंतु वास्तवसे तो तिसको जगत्का सृष्टापना भी संभवता नहीं, ऐसे अब कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि प्रधानकी मुक्तपुरुष को छोड़के बद्धपुरुषों के प्रतिही प्रवृत्ति अरु कर्त्ता कर्म आदिक की अपेक्षा से बन्ध अरु मोक्ष आदि शब्दके वाच्य भोग मोक्षके अर्थ नियमित प्रवृत्ति संभवे नहीं। इस कथन करके पुरुष के अर्थ भोग मोक्ष मय अर्थ रूप प्रयोजन को अंगीकार करके प्रधान प्रवृत्त होता है । इसप्रकार जो पूर्व शङ्काके अवसर बिषे सांख्यवादीने कहारहा सो खंडनकिया] > अचेतनरूप प्रधानकी मुक्त अरु बद्धपुरुषों की अपेक्षा से, अरु कर्त्ता कर्मदेश अरु कालरूप निमित्तकी अपेक्षासे पुरुषके प्रतिबंध अरु मोक्ष आदिक फलके अर्थ नियमित प्रवृत्ति बने नहीं। अरु हमों करके उक्त सर्वज्ञ ईश्वरके कर्त्तापने बिषे तो उक्त प्रवृत्ति बने है॥ इसप्रकार वादीके पक्षको खंडन करके, अब श्रुतिके व्याख्यानको कहतेहुये । स प्राणमसृजत । <सो प्राणको सृजता भया > इस वाक्यके तात्पर्य रूप अर्थको कहते हैं। ईश्वररूप पुरुषकरके , राजावत्, सर्वकार्यबिषे अधिकारी ऐसाप्राण सृजाजाताहै। ऐसे तात्पर्यार्थ को कहके अब प्रश्नपूर्वक अक्षरार्थ को कहतेहैं ॥प्र०॥ हे भगवन्! कैसे सृजता भया ॥ उ० ॥ । सप्राणमसृजत । < सो प्राणको सृजता भया > सो पुरुष, उक्त प्रकार से त्रिकालवर्ति वस्तुओंको विषयकरनेवाले ज्ञानरूप ईक्षणको करके सर्वके प्राणमय (समष्टिप्राणरूप) हिरण्यगर्भनामवाले सर्व प्राणियों के करणों (इन्द्रियों) के आधाररूप अन्तरात्माको सृजता भया। अरु ऽ । प्राणाच्छ्रद्धा । < प्राणसे श्रद्धा > ऽ इसप्राणसे सर्व प्राणियोंकी शुभकर्म बिषे प्रवृत्तिकी कारणरूप श्रद्धाको सृजता भया। तिसके पश्चात् कर्मफलके उपभोगके साधनरूपदेहके अधिष्ठान अरु कारणरूप पंचीकृत पंचमहाभूतोंको सृजताभया । तहां । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी । < आकाश वायु ज्योति जल पृथिवी

(को सृजताभया) ›ऽ शब्दगुणवाले आकाश को, अरु अपने गुण स्पर्श अरु कारण के गुणशब्दकरके युक्त दोगुणवाले वायुको, अरु तैसेही अपने गुणरूप अरु कारणके गुणशब्द अरु स्पर्शकरके युक्त तीनगुणवाले तेज (अग्नि) को, अरु तैसेही अपनेगुण रस अरु कारण के गुण शब्द स्पर्श अरु रूपकरके युक्त चार गुणवाले जलको, अरु तैसेही अपने गुण गंध अरु कारण के गुणशब्द स्पर्श रूप रस, इनसर्वके मिलनेकरके पांचगुणवाली पृथिवी को सृजताभया । अरु ‹। इन्द्रियम् । मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं ।‹ इन्द्रियोंको मनको अन्नको अरु वीर्यको (सृजताभया) › ऽ तैसेही तिनहीं पंचभूतों से अपंचीकृत अवस्था बिषे ज्ञानके अर्थ अरु कर्मके अर्थ दशसंख्यावाले दोप्रकारके अर्थात् ज्ञानके अर्थ पांच ज्ञानेन्द्रिय को अरु कर्मकेअर्थ पांचकर्मेन्द्रियको, अरु तिन इन्द्रियोंके नियामकशरीरबिषे स्थितसंशय अरु संकल्प विकल्पादि लक्षणवाले मन को सृजताभया । अरु इसही प्रकार प्राणियोंके कार्य अरु कारणको सृजके तिनकी स्थिति के अर्थ व्रीहि (तंडुलधान्य) अरु यव आदिरूप अन्नको सृजताभया । तिसके पश्चात् उस अन्न को भोजन कियेहुयेसे, सर्वकर्म बिषे प्रवृत्तिके साधन वीर्य्य (बल) को सृजताभया । अरु ऽ । तपो मन्त्राः कर्म लोकालोकेषु च नाम च ।‹तपको मन्त्रोंको लोकको लोकबिषे नामको (सृजताभया)›ऽ अन्तःकरणकी अशुद्धता करके भया जो पापावरण तिन पापों करके संकरता (मिश्रभाव) को प्राप्तभये तिस बलवाले प्राणियोंके संकरताके निवारणार्थ चित्तशुद्धिके साधन तपको सृजता भया अरु तिन तपसे शुद्धभये हैं अन्तर के अरु बाह्यके कारण जिन्होंके, ऐसे प्राणियों के अर्थ कर्मके साधनभूत जे ऋग् यजु साम अरु अथर्वणवेदरूप मन्त्रोंसे अग्निहोत्रादिरूप कर्म होता भया । अरु तिन कर्मोंसे कर्मके फलरूप चतुर्दशलोक होतेभये । अरु तिनलोकों बिषे उत्पन्नभये प्राणियोंका देवदत्त यज्ञदत्त विष्णुदत्त आदिरूप नामहोताभया ऽ ॥ [ननु, ईश्वरके सृष्टापने के

कथनसे कलाओं का सत्यपना अङ्गीकार करना चाहिये । क्योंकि शुक्तिरजत आदिकरूप आरोप बिषे सृष्टपने (उत्पन्नहोने) के व्यवहारका अभाव है ताते यह आशंकाकरके, नेत्र बिषे अंगुली के धारण अरु नेत्रमर्दन आदिक प्रयत्न से उत्पन्न किये दो चन्द्र मशक अरु मक्षिका आदिकों के आरोप के देखने से, । अथ रथान्रथयोगान् पथः सृजत इति । ८ अब जाग्रत् के अनन्तर, रथ को अरु रथसें जुड़नेवाले अश्वादिकों को अरु मार्गों को सृजता भया, इस बृहदारण्यकी श्रुति बिषे उत्पन्न होनेकरके उक्त स्वप्न के पदार्थोंकी भ्रमरूपताके देखनेसे, ईश्वरकरके रचित कलाओं का सत्यपना मानना चाहिये यह कहना बने नहीं । इस अभि-प्रायसे अब भाष्यकाराचार्य्य कहते हैं । यहां तिमिरशब्द जो है सो नेत्रबिषे अंगुली के धरने आदिक निमित्त के ग्रहणार्थ है] ऽ इसरीति से यह सोलहकला प्राणियों की अविद्या आदि दोषरूप बीजकी अपेक्षासे, तिमिरदोषकरकेयुक्त दृष्टिसे सृजेहुये दो चन्द्र मशक अरु मक्षिका आदिकोंवत्, अरु स्वप्न के द्रष्टाकरके सृजे हुये सर्व स्वप्नके पदार्थवत् सृजीहुई है। पुनः ऽ [जिसप्रकार आत्माके निश्चयार्थ अध्यारोपको कहके अब तिसके अपवादको प्रकट करतेहैं] ऽ समुद्रबिषे नदियोंवत् तिसही पुरुषबिषे अपने २ नामरूपादि उपाधियों के भेदको त्याग के अतिशयकरके लीन होती हैं ४ । ६३ ॥

५ ॥ हे सौम्य!अब उक्त कलाओं के अपवाद कोभी सविस्तर दृष्टान्त सहित श्रवणकरो ॥ । स यथेमा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति । ८ सो जैसे यह नदियांबहती हुई अरु समुद्रहै अयन (आत्मभाव जिनका ऐसी हुई समुद्र को पायके अस्तताको प्राप्तहोतीहैं ; ऽ सोसमुद्रबिषे नदीके लय का दृष्टान्त कैसेहै, तहां कहतेहैं। जैसे लोक बिषे यहनादियां बह-ती हुई अरु समुद्र है अयन अर्थात् ८ आदिअन्तमें आत्मभाव जिनका ऐसीहुई समुद्रको पायके अपने नामरूप के तिरस्कार

स यथेमा नद्यः स्पन्दमानाःसमुद्रायणाः समुद्रंप्राप्यास्तंगच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ॥ एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेषश्लोकः ५ । ६४ ॥

रूप अस्ततताको पावती हैं। अरु ऽ। भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। > अरु तिनके नाम (अरु) रूप नाशको पावते हैं समुद्र ऐसेही कहतेहैं> ऽ अस्तको प्राप्तभई उन नदियों के गंगा यमुना गोदावरी आदि लक्षणवाले नाम अरु रूप यह दोनों नाशको पावते हैं। अरु तिन नामरूपके नाशभये पीछे अवशेषरहा जो जलरूप वस्तु, सो समुद्र ऐसे कहतेहैं ॥ हे सौम्य! जिस प्रकार यह दृष्टान्तहै ऽ। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाःषोडशकलाःपुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति। ऐसेही इस परिद्रष्टाकी यह षोडशकला (सो) पुरुषहै अयन जिनका ऐसीहुई पुरुषको पायके अस्तको पावैहैं> ऽतैसेही, उक्त लक्षणवाला प्रसंगविषे प्राप्त भया पुरुष जो परिद्रष्टा ऽ अर्थात् अपने प्रकाश के कर्त्ता सूर्यवत् सर्व ओरसे स्वरूपभूत दर्शनका कर्त्ता है इस परिद्रष्टाकी यहप्राणादि सोलहकलाहैं। सो उक्त सोलहकला नदीके अयनरूप समुद्रवत्, पुरुष है अयन (आत्मभावको प्राप्ति) जिन कला की ऐसीहुई पुरुषरूप आत्मभाव को पाइके अपने नामरूपके तिरस्काररूप अस्ततताको पावती है। अरु ऽ। भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते। < तिसके नामरूप नाशको पावते हैं, पुरुष ऐसे कहतेहैं > ? तिनकला के प्राणादिक लक्षणवाले नामरूपनाश को पावतेहैं। अरु नामरूप के नाशभये पीछे जोकि अविनाशी तत्त्व अवशेष रहताहै सो ब्रह्मवेत्ताओंकरके पुरुष ऐसेकहतेहैं॥ जो पुरुष गुरुने देखाया है कलाके लयकामार्ग जिसको, ऐसाहुआ

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः। तं वेद्यं पुरुषं वेद यथामावो मृत्युपरिव्यथा इति ६।६५॥

इसरीतिसे जानताहै ८। स एषोऽकलोऽमृतो भवति।८ सो यह अकल अमृत होताहै ; ऽ सो यह पुरुष, अविद्या काम अरु कर्म करके जन्य जो प्राणादिक कला तिनके विद्याकरके नाशभये कलारहितहोताहै। अरु जिसकरके अविद्याकृत कलारूप निमित्त (उपाधि) का किया देहसे निकलने आदिक शब्दका वाच्य मरणादिक व्यवहाररूप मृत्युहै, ताते उन कलाके नाशभये यह पुरुष कलारहित होनेसेही अमृत (मरणरहित) होताहै ८। तदेषश्लोकः।८ तिसबिषे यह श्लोकहै ; ७ तिसही इसअर्थ बिषे यह श्लोक (अग्रिमवाक्यरूप वेदका मंत्र) प्रमाणहै ५। ६४॥

६॥ हे सौम्य! । अराइव रथनाभौ।८ जैसे रथकी नाभि विषे अरा ; अर्थात् ऽ [रथकेचक्र (पहिया) कीनाभि (मध्यकाकाष्ठ) तिसको रथनाभि कहतेहैं, तिस रथनाभि बिषे अरु मार्गको स्पर्श करनेवाली चक्ररूप नेमी (पूठि) तिस बिषे लगेहुये खड़े काष्ठ तिसको रथचक्रका परिवार कहते हैं। अरु तिनहींको अरा कहते हैं] सो जैसे रथचक्रके परिवाररूप अरा रथके चक्रकी नाभि बिषे प्रवेशको प्राप्तभये तिस रथचक्रके आश्रित होते हैं। तैसेही ऽ। कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः।८ कला जिसबिषे आश्रितहैं ; ऽ प्राणादिकला जिस पुरुषबिषे 'उत्पत्ति स्थिति अरु लय, इन तीनोंकालोंबिषे आश्रित होते हैं ऽ। तं वेद्यं पुरुषं वेद।८ तिस जाननेयोग्य पुरुष को जानना ; ऽ तिस कलाके आत्मरूप जाननेयोग्य सर्वत्र पूर्णहोनेसे अथवा सर्व शरीरोंरूपी पुरबिषे रहनेसे पुरुष तिस पुरुषपदसे लक्ष्य पुरुषको जैसाहै तैसाही जानना ॥ हे शिष्यो! ऽ। यथामावोमृत्युपरिव्यथा।८ तुमको मृत्यु पीड़ा मतकरै ; ऽ तुमको मृत्यु जो है सो क्लेशको प्राप्त मतकरै ॥ अर्थात् जिसकरके तुम क्लेशको प्राप्तभये दुःखीहीहो, एतदर्थ मैं

तान् होवाचैतावदेवाहमेतत्परंब्रह्मवेदनातःपरमस्तीति ७ । ६६ ॥

कहताहौं कि तुम्हारेको क्लेश मत प्राप्तहो । इत्यभिप्रायः ६ । ६५ ॥

७॥ हे सौम्य! पिप्पलादनाम मुनीश्वर आचार्य उक्तरीत्या तिन अपने प्रश्नकर्ताओंको उक्त उपदेशकरके पुनः ८ । तान् होवाच । ; तिनकेप्रति कहतेभये ; ७ तिन अपने शिष्योंको कहतेहुये कि हे प्रियदर्शन! हे शिष्यो! ८ । एतावदेवाहमेतत्परंब्रह्मवेद । ; इतनाही परब्रह्महै इसको मैं जानता हौं ; ७ इतनाही जानने योग्य परब्रह्म है इसको मैं जानता हौं अरु ८ । नातः परमस्ति इति । ; इससे श्रेष्ठ नहीं है ; इसकहे हुये परमपुरुष से अन्य अत्यन्त श्रेष्ठ जानने योग्य कोई नहीं है । हे सौम्य! इसप्रकार अपने शिष्योंको अज्ञात अरु अवशेष रखने योग्य अन्य वस्तु के सद्भावकी आशंकाकी निवृत्ति के अर्थ अरु हम कृतार्थभये इस प्रकारकी निश्चय आत्मक बुद्धिके जननार्थ पिप्पलाद मुनीश्वर रूप सर्वज्ञ आचार्यने कहाहै ७ । ६६ ॥

८॥ हे सौम्य! जब पिप्पलाद मुनीश्वररूप आचार्यके उपदेश कोपाय निःसंशयभये वे सुकेशाआदि छवोशिष्य आप कृतार्थ भये, तिस निःसंशय कृतार्थकर्त्ता गुरुके अर्थ ब्रह्मविद्या के प्रतिउपकार (बदला) कुछ भी न देखतेभये ॥ प्र० ॥ तब क्या करतेभये उ० ॥ । तेतमर्चयन्तः । ; वे तिसका पूजनकरतेहुये ; । अर्थात् वे छवो शिष्य तिस पिप्पलाद नामवाले अपने गुरुको दोनोंपादों विषे पुष्पांजली अर्पण करने से अरु मस्तक साक्षात् उनके चरणों में रख प्रणिपात (दंडवत्) से पूजन करते हुये, कहते भये प्र० ॥ क्या कहते भये ॥ उ० ॥ । त्वंहिनः पितायोऽस्माकं । ; आप हमारे पिताहौ ; हे गुरो! आप हमारे नित्य अजर अमर अभय ब्रह्मरूप शरीर के विद्याकरके जनक होनेसे पिताहौ । अरु

ते तमर्चयन्तस्त्वं हिनः पितायोऽस्माकमविद्यायाः परंपारंतारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः इति ८ । ६७॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गतषष्ठप्रश्नः ॥

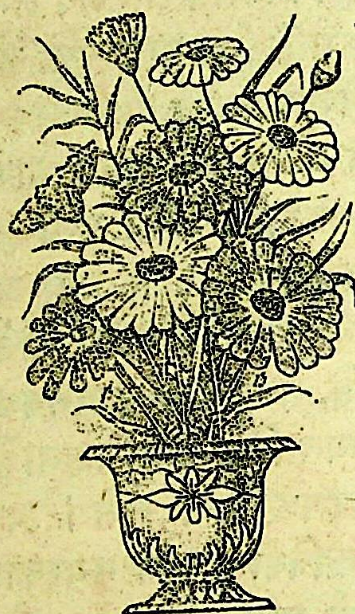
इति प्रश्नोपनिषत्समाप्ता ॥

(अविद्यायाःपरंपारं तारयसीति । (जो अविद्यासेपरपारकेताई तारतेहौ ;) जो आपही बिपरीत ज्ञानमय जन्म जरा मरण रोग अरु दुःखादिरूप मकरादि तिनकरके युक्त जो अविद्यारूप महासागर तिससे, पर विद्यारूप दीर्घ नौकाकरके ऽ महासागर के पारवत्, अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष नामवाले पारकेताईं हमको पार करतेहौ, एतदर्थ आपका हमारेप्रति अन्य (जन्मदायक) पिता से अधिक पितापना घटित है ॥ अरु जब अन्यपिता भी शरीर मात्रकोही उत्पन्न अरु पालन पोषण करता है तथापि लोकविषे अत्यन्त पूजने योग्यहै, तब अत्यन्त अभयके दाता सद्गुरु रूप पिताके पूजनेकी योग्यताविषे क्या कहना है ॥ एतदर्थ । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः इति । (परमऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु, परमऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु, (ब्रह्म विद्याके सम्प्रदायके कर्त्ता परमऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु ॥ यहां जो द्विवार कथनहै सो ब्रह्मविद्याके आचार्यों विषे आदरार्थ है अरु'इति, शब्द उपनिषद्कीसमाप्त्यर्थहै ॥ इति सिद्धम् ८ । ६७॥

इति प्रश्नोपनिषद्गतषष्ठप्रश्नभाषाटीका समाप्ता ॥

इति प्रश्नोपनिषत्सम्पूर्णा ॥





इस मतबेमें जितने उपनिषद् छपे हैं उनमेंसे कुछ नीचे लिखे हैं ॥

कठवल्ली उपनिषद् भा॰ टी॰ सहित क़ी॰ ≈)॥

इस उपनिषद् में गुरु शिष्यसंवाद द्वारा श्रीवाजश्रवा ऋषीश्वर के पुत्र श्रीउद्दालक ऋषिने जिसप्रकार से विश्वजित् नामा यज्ञ की और उसीयज्ञ के दक्षिणा में ऋत्विजादि ब्राह्मणों को अपरिमित धन व गौओंको दान दिया और उसी यज्ञ में अपने परमप्रिय पुत्र ज्ञानशिरोमणि श्रीनचिकेता को मृत्यु के अर्थ दानदिया और नचिकेता यमालय में गया और मृत्यु ने सावधान पूजन किया और परस्पर वार्त्तालाप हुआ यह सब वृत्त संवित् मंत्रों में वर्णित है ॥

माण्डूक्योपनिषद् भा॰ टी॰ सहित क़ी॰ ॥=)

ॐकारस्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्मकी आत्माकी अभेदताका निरूपण आगम, यवैताख्य, अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य इन चार प्रकरणों में निरूपण कियागया है अवलोकन करने योग्य है ॥

ऐतरेयउपनिषद् भा॰ टी॰ सहित क़ी॰ ≈)

यह उपनिषद् ऋग्वेदके ब्राह्मणभाग से सम्बन्धितहै—इस में मुख्य ब्रह्मविद्याका वर्णन है ॥

ईशावास्योपनिषद् भा॰ टी॰ सहित क़ी॰ –)॥

जिसे वाजसनेयीसंहिता भी कहते हैं-इस उपनिषद् में यावत् नाम रूपात्मक जगद्भाव है सब ईशही में घटित किया है ॥

तैत्तिरीयउपनिषद् भा॰ टी॰ सहित क़ी॰ ।–)॥

यहउपनिषद् यजुर्वेद सम्बन्धी है इसउपनिषद् में श्रीसच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर निराकार के साकार रूप होने का प्रतिपादन है ॥

छान्दोग्यउपनिषद् भा॰ टी॰ सहित क़ी॰ ॥≈)॥

इस उपनिषद् में इन्द्रियादिकों के संघात विषे स्थित प्राणों की ज्येष्ठताका व श्रेष्ठताका एक आख्यायिका द्वारा प्रतिपादन है-मन्त्रों के नीचे भरत देशभाषा में सुन्दर तिलक किया गया है ॥